UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186474
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. W 500 A27V Accession No. GH 3493

Author Agrawal, Ramesh Chandra

Title Vignan Jan Sevame.

This book should be returned on or before the date marked below.

दो शब्द

विज्ञान के इस युग में मनुष्य ने अनेक असम्भव कार्यों को सम्भव कर दिखाया है। आज से कुछ वर्ष पूर्व जिन बातों की हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे, वे बातें आज प्रत्यक्ष होकर हमारे सामने आ रही हैं। आज जो बातें हमें असम्भव दिखाई देती हैं, हो सकता है कल वे ही सम्भव हो जाएँ। इसमें आश्चर्यचकित होने की कोई बात नहीं।

विज्ञान के ऐसे ही आश्चर्यजनक आविष्कारों को विद्यार्थियों के सम्मुख रोचक ढंग में रखना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है। विज्ञान के अनेकानेक क्षेत्रों में जो आविष्कार हुए हैं, उनमें से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कारों पर इस पुस्तक में दृष्टिपात किया गया है। प्रकृति के रहस्यमय जीवों तथा विज्ञान के कुछ प्रारम्भिक आविष्कारों से लेकर नवीनतम अनुसन्धानों तक जैसे अन्तरिक्ष यात्रा, अन्तरिक्ष यान था अंतरिक्ष स्टेशन आदि जटिल विषयों को बहुत ही सरल भाषा में समझाया गया है।

पुस्तक लिखने में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि प्रतिपाद्य विषय सरल भाषा में लिखा जावे जिससे साधारण पाठक भी उसे समझ सकें। विज्ञान के अनेकों आविष्कार बड़े ही जटिल हैं, किन्तु उन आविष्कारों को भी प्रस्तुत पुस्तक में बहुत ही सुगम बनाने का प्रयास किया गया है। अधिक रोचक एवं आकर्षक बनाने के लिए स्थान-स्थान पर चित्र भी दिए गए हैं।

पाठकों को विज्ञान के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराने के लिए हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तकों की कमी है। यदि प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए किंचित् भी उपयोगी सिद्ध हुई तो मैं अपना परिश्रम सफल मानूँगा ।

—लेखक—

कहाँ पर क्या

कथा क्रमांक	विषय	पृ० क्रमांक
१.	पुष्पक विमान से जैट विमान तक ...	१
२.	अंतरिक्ष-यात्रा	८
३.	उड़नतश्तरियाँ	१६
४.	कृषि-उन्नति में रेडियो-सक्रिय किरणें ...	२५
५.	चाकलेट	३१
६.	महान् वैज्ञानिक--सर आइजक न्यूटन ...	३७
७.	प्लेटिनम	४४
८.	ट्रांजिस्टर	५०
९.	शेषनाग के वंशज	५६
१०.	विचित्र मछलियाँ	६४
११.	सहयोग का भाव इन जीव-जन्तुओं से सीखिये	७५
१२.	माइकेल फैराडे	८३
१३.	भारत की वेधशालाएँ	९१
१४	कृत्रिम वस्त्र	९९
१५.	लक्ष्य-भेदी अस्त्र	१०५
१६.	यातायात के साधनों में परमाणु ऊर्जा का प्रयोग	११३
१७.	शनि का पिता—यूरेनस ...	१२०
१८.	टेलीविजन	१२६

: १ :

पुष्पक विमान से जैट विमान तक

आकाश में पक्षियों के समान उड़ने की अभिलाषा मनुष्य के मन में सदा से रही है। किन्तु यह केवल काल्पनिक ही रही, स्वप्नलोक की ही वस्तु रही। यों अपनी इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए कभी मनुष्य ने पंख लगाकर उड़ने का प्रयत्न किया, कभी सूप बाँधकर भी मनुष्य आकाश में उड़ा।

आकाश में यात्रा करने के सम्बन्ध में हमने रामायण में भी पढ़ा है। रावण विमान से सीता को हरण करके लंका ले गया था, हनुमान ने आकाश-मार्ग से समुद्र पार करके लंका में प्रवेश किया। राम-रावण-युद्ध के समय हनुमान आकाश-मार्ग से ही लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी लेने द्रोणगिरि पर्वत तक गये और वापस आये थे और राम, सीता, लक्ष्मण तथा उनके अन्य प्रमुख सहायक पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या वापस आये

थे। इस प्रकार आकाश-मार्ग से यात्रा करने के सम्बन्ध में भारत के आख्यानों में हमें रामायण तथा अन्य ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार मिस्र, चीन आदि देशों में भी इसी प्रकार के उल्लेख हैं।

बालकों के मनोरंजन के लिए उड़नखटोले आदि की मन-गढ़न्त कहानियाँ भी रची गई जो घर-घर प्रचलित हैं। इसी प्रकार दैवी शक्ति का नाम देकर परियों, राक्षसों आदि की भी अनेक कथाएँ बनाई गई, जिनमें बताया गया कि अपनी अद्‌भुत शक्ति के कारण इन्हें आकाश में विचरण करना भी सुगम था।

इन सब कथा-कहानियों से हमें मनुष्य की आकाश-सैर के लिए तीव्र अभिलाषा का आभास हो सकता है। सदियों तक इसी प्रकार की कल्पना का आनन्द मनुष्य लेता रहा, किन्तु कल्पना के साथ-साथ मनुष्य इस दिशा में कुछ प्रयत्नशील भी बना रहा। उसे धुन सवार थी आकाश में सैर करने की और अन्त में उसकी यह कल्पना साकार हुई। इस प्रकार वायुयान का इतिहास यों तो बहुत पुराना है, किन्तु इसका आधुनिक इतिहास इंग्लैण्ड के रोजर बेकन के समय से प्रारम्भ होता है। आज से लगभग ६५० वर्ष पूर्व रोजर बेकन ने बिना पशुओं की सहायता से चलनेवाली गाड़ियों की घोषणा की। इसी प्रकार हवा में उड़ने की भी कल्पना उसने की। उसने लोगों को सुझाव दिया कि यदि किसी धातु के खोखले बेलन में कोई गैस

भर दी जाय, तो वह मनुष्य को ऊपर ले जाने में समर्थ होगी। लेकिन लोगों ने उसे मूर्ख ही समझा। इसी प्रकार इटली के वैज्ञानिक लिनार्दो-द-विन्ची के विचार भी केवल लिखित रूप में ही रह गये—साकार नहीं हो सके।

इस ओर सबसे पहले हेनरी केवेण्डिश नामक वैज्ञानिक को कुछ सफलता मिली। उसने सन् १७६६ में हाइड्रोजन गैस की

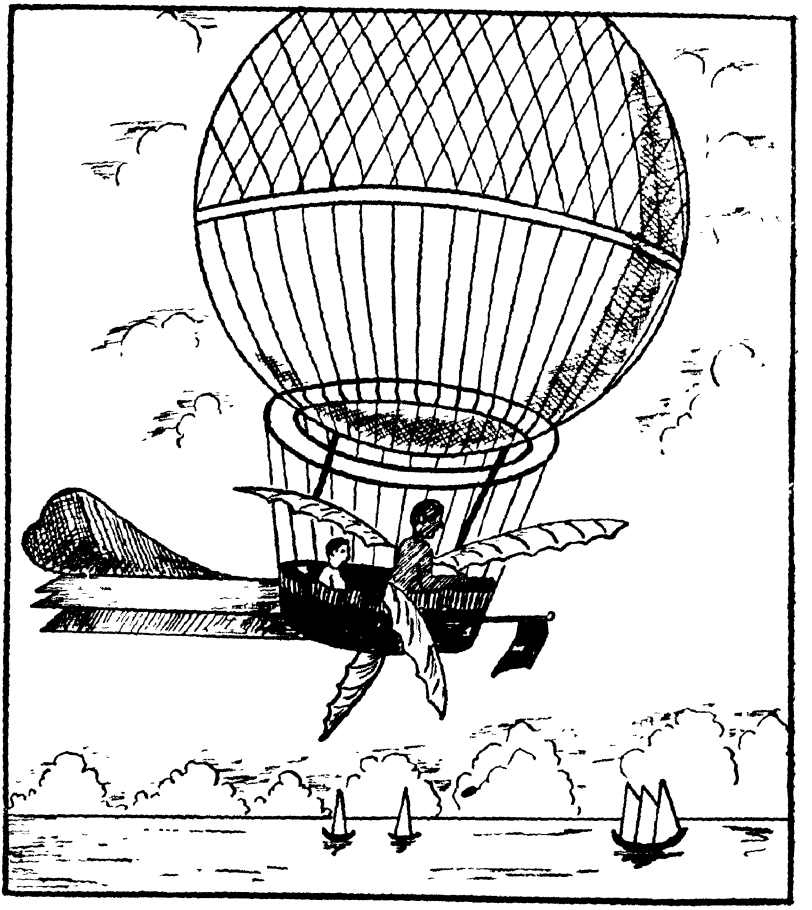

खोज की और सन् १७८३ में एक गुब्बारा आकाश में छोड़ा। इसी समय मौण्टे गोल्फियर नामक फ्रांसीसी बन्धुओं ने भी धुआँ भरकर एक गुब्बारा आकाश में छोड़ा। हाइड्रोजन भरे हुए अनेक गुब्बारों को आकाश में छोड़ा गया। किन्तु इन गुब्बारों की उड़ान में और पक्षियों की उड़ान में पर्याप्त अन्तर था। पक्षी स्वेच्छानुसार जिधर मुड़ना चाहें मुड़ सकते थे, वे पृथ्वी पर उतर भी सकते थे; किन्तु गुब्बारों को वायु पर ही आश्रित रहना पड़ता था। अतः मनुष्य ऐसे यान की कल्पना करने लगा जो वायु पर आश्रित न होकर स्वेच्छापूर्वक इधर से उधर चलाया जा सके।

सन् १८७१ में आटो लिनलिथल नामक जर्मन वैज्ञानिक ने डैने-सरीखे ढाँचों, जिन्हें ग्लाइडर कहते हैं, की सहायता से कई सौ फुट का फासला हवा में तय किया। इन्हीं प्रयोगों में इस वैज्ञानिक की मौत हुई। वाशिंगटन के प्रोफेसर लेंगले ने इस ग्लाइडर में भाप का इंजिन लगाया, जिससे उसका वजन १२५ पौंड हो गया। इसके पंख १३ फुट लम्बे थे। यह ग्लाइडर १ मिनट तक हवा में उड़ता रहा। इसी दिशा में अमेरिका के ही राइट बन्धुओं ने भी प्रयोग किये और १७ दिसम्बर, १९०३ को ओर्विल राइट अपने द्वारा निर्मित विमान में बैठकर १२ सैकण्ड तक उड़ता रहा। दूसरी बार उनका यान ५९ सैकण्ड तक उड़ा। दोनों भाइयों ने अपनी इस उड़ान को फ्रांस में भी प्रदर्शित किया।

मुख्यतः लकड़ी के बने इस जहाज में पहिये लगे थे। जहाज को रेल की पटरी पर खड़ा कर दिया जाता था और उसे चलाने के लिए पहले धक्का दिया जाता था जिससे उसे गति प्रदान की जा सके। बाद में आकाश मे यह यान ४० मील प्रति घण्टा की गति से उड़ता था।

ऐसे ही यान को विकसित करके फ्रांस के लुई ब्लोरियांट ने १३ जुलाई, १९०९ को कैले से उड़ान भरकर पहली बार इंगलिश चैनल पार की। नार्वे के सैनिक अफसर ने सबसे पहले उत्तरी सागर की ३०० मील की दूरी हवाई जहाज के द्वारा ४ घण्टे १० मिनट में तय की।

सन् १९१४ के महायुद्ध तक हवाई जहाजों के निर्माण में काफी प्रगति हो गई थी। अब हवाई जहाज ८६ मील प्रति घण्टे की गति से ११,४५० फुट की ऊँचाई पर उड़ सकता था और चार घण्टे हवा में रह सकता था। युद्ध-काल में यानों का पर्याप्त विकास हुआ। सन् १९१८ में इंग्लैण्ड में ऐसे वायुयानों का आविष्कार हो गया था जो बम-वर्षा कर सकें और १५० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से दौड़ सकें। इनमें २५ मन तक वजन भी जा सकता था।

युद्ध के पश्चात् इन विमानों का उपयोग यातायात के लिए होने लगा। अब विमानों को अधिक आरामदायक बनाये जाने

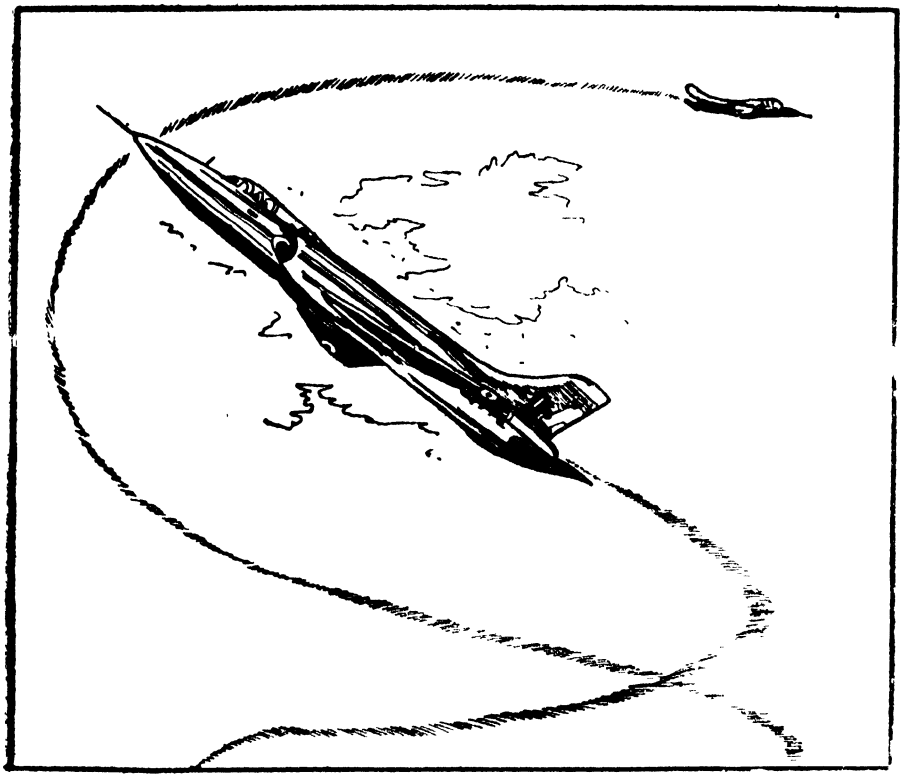

की बात सोची जाने लगी । १९३९ तक यात्रियों को लाने-ले जानेवाले जहाज बहुत मिलने लगे । द्वितीय महायुद्ध के समय २००मील प्रति घण्टे की रफ्तार से ४५ आदमियों तक को ले जानेवाले वायुयानों का निर्माण हुआ।१९१४ में इंजिन की अधिकतम शक्ति १०० हॉर्स पावर थी तथा रफ्तार ३०० मील प्रति घण्टा; लेकिन १९४५ में यह शक्ति बढ़कर २,००० हॉर्स पावर तक पहुँच गई और रफ्तार ५०० मील प्रति घण्टा। ५० हजार फुट

की ऊँचाई तक ये जहाज जा सकते थे। १९५३ में हाकर हण्टर ने ७२७·६ मील की रफ्तार का रिकार्ड स्थापित किया। अब तो आवाज की गति से तेज़ चलनेवाले जैट विमानों का निर्माण हो गया है।

विज्ञान की उन्नति ने वायुयान में पर्याप्त उन्नति कर दी है। रैडार के आविष्कार ने हवाई यात्रा को बहुत सुविधाजनक बना दिया है। आज का मानव वायु पर बहुत अंशों में विजय पाने में सफल हुआ है।

प्रश्न

१. आकाश में उड़ने के लिए मनुष्य ने किससे प्रेरणा ग्रहण की ?

२. वायुयान का उल्लेख किस पुस्तक में सबसे पहले हुआ ? क्या यह ठीक है कि उस समय भी लोग इतने उन्नत थे ?

३. वायुयान बनाने का श्रेय राइट-बन्धुओं को अधिक है अथवा रोजर बेकन को ?

४. 'वायुयान से लाभ' विषय पर दो पृष्ठों का निबन्ध लिखो।

५. अगर तुम वायुयान में बैठे हो, तो अपनी सैर के अनुभव लिखो—अन्यथा काल्पनिक सैर का वर्णन करो।

: २ :

अंतरिक्ष-यात्रा

विज्ञान के इस युग में आज हम जिन बातों की कल्पना भी नहीं कर सकते, कल वही बातें साकार हो जाती हैं। सन् १९०३ में प्रथम वायुयान में सैर करते हुए राइट बन्धुओं ने कभी यह नहीं सोचा होगा कि केवल ६० वर्षों में मनुष्य अंतरिक्ष की इतनी ऊँची उड़ान कर सकेगा। संभव है इतनी ऊँची उड़ान के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ सोचा हो, किन्तु उन्होंने यह कभी नहीं सोचा होगा कि इन उड़ानों के लिए बीच में एक अंतरिक्ष स्टेशन भी बनाया जायगा। लेकिन आज इसकी सम्भावना बहुत अधिक बढ़ गई है।

सोवियत रूस के मेजर गगारिन ने अंतरिक्ष-यात्रा करके संसार को आश्चर्य में डाल दिया। मानव के रूप में अंतरिक्ष में उड़ान करनेवाला यह पहला ही व्यक्ति था। वैसे उसके पूर्व विभिन्न देश बन्दर, कुत्ता या वनमानुष को अंतरिक्ष में भेज चुके थें।

अंतरिक्ष-यात्रा के लिए जानेवाले यात्रियों में सोवियत रूस के मेजर मगारिन का नाम तो सर्वाधिक प्रसिद्ध है ही। इनके अतिरिक्त तितोव, शेपर्ड और ग्रिशम ने भी छोटी-बड़ी अंतरिक्ष-यात्राएँ की हैं। अमेरिका के इन यात्रियों को अंतरिक्ष में ले जानेवाले यान एक विशेष किस्म के होते हैं जिन्हें 'कैपसूल' कहते हैं।

आप लोगों ने अपने-अपने घरों में तेल की कुप्पी देखी होगी। 'कैपसूल' की आकृति भी लगभग ऐसी ही होती है। अंतरिक्ष-यात्रा के लिए इस प्रकार की आकृति चुनने का एक विशेष कारण यह है कि लम्बे और पतले आकार पर वायुमण्डल में घर्षण तथा ऊष्मा कम उत्पन्न होती है। यद्यपि राकेटों का यह रूप बहुत सुन्दर नहीं है, पर यही रूप अंतरिक्ष-यात्रा के लिए सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

प्रारम्भ में इन कैपसूलों को खाली अवस्था में अंतरिक्ष में भेजा गया था, किन्तु बाद में इनमें, जैसाकि ऊपर संकेत किया गया है, कुछ जीवधारियों को भेजा गया और उन्हें पृथ्वी पर

सकुशल उतारा गया। वैज्ञानिकों ने जब यह प्रयोग सफलता-पूर्वक कर लिया कि अंतरिक्ष में जीवधारियों के जीवन को कोई खतरा नहीं है तब सम्पूर्ण आवश्यक सामग्रियों से युक्त कैपसूल में मानव अंतरिक्ष की यात्रा पर उड़ा।

कैपसूल की बनावट अत्यन्त जटिल है। इसका निचला व्यास लगभग छः फुट तथा तथा ऊँचाई दस फुट रहती है। यह कैपसूल पृथ्वी से लगभग १५० मील ऊपर तक पहुँच सकता है और पूर्व आयोजनानुसार वह सकुशल पृथ्वी पर वापस आ सकता है। इस कैपसूल को हम राकेट के नाम से पुकारते हैं।

कैपसूल पृथ्वी की परिक्रमा १७,४०० मील प्रति घण्टे की गति से कर सकता है। कैपसूल में सिलिकन बैटरी फिट रहती है जो सूर्य से शक्ति ग्रहण करती है। एक यंत्र दूषित वायु को भी बाहर निकालता है। इस कैपसूल में स्वयंचालित घड़ियाँ भी रहती हैं जिनका काम यात्री को पृथ्वी पर लौटने का समय बताना तथा गतिरोधक राकेटों को चालू करना है। कैपसूल ऐसी धातु के बनते हैं कि उसमें बैठे यात्री को भीषण गर्मी में भी गर्मी का अनुभव नहीं होता।

कैपसूल की बनावट इस प्रकार की होती है कि इसका अग्रभाग वायुमण्डल में बहुत अधिक घर्षण उत्पन्न करता है। फलस्वरूप इसका वेग जब चाहें तब कम किया जा सकता है। दूसरी विशेषता यह है कि कैपसूल में एक पैराशूट की छतरी

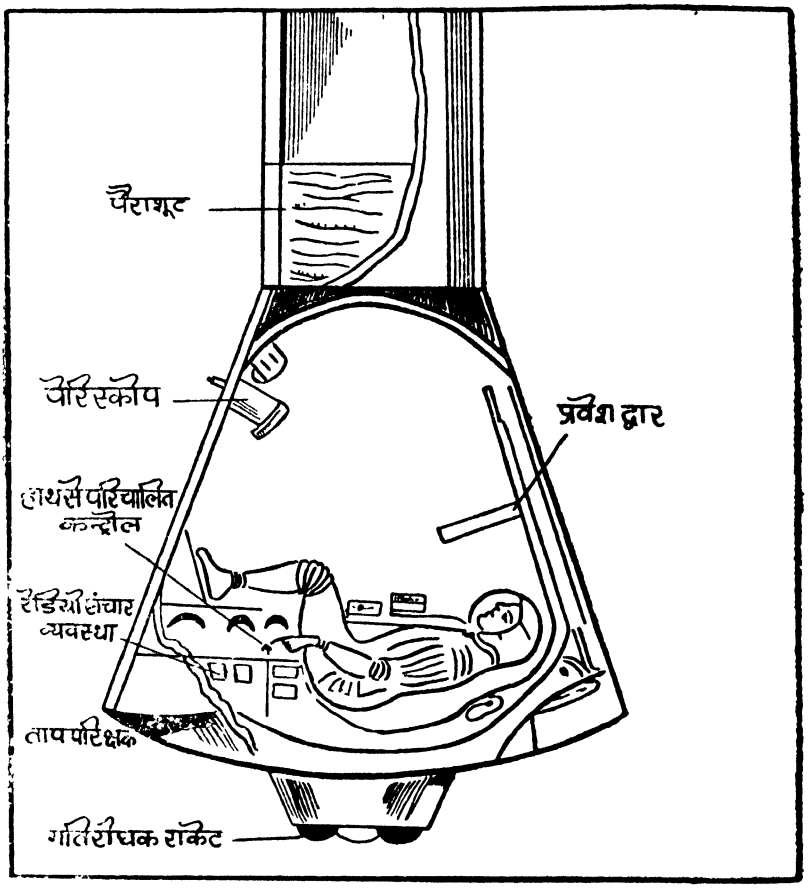

लगी रहती है। अंतरिक्ष से वापस आते समय पृथ्वी जब निकट आनेवाली होती है, तभी यह छतरी अपने-आप खुल जाती है जिससे कैपसूल का वेग और भी नियंत्रित हो जाता है। गति को रोकने के लिए यह प्रबन्ध इस कारण किया गया है कि कैपसूल पूरे वेग से आकर पृथ्वी से टकराकर चकनाचूर न हो जाय। इतनी सुविधाओं एवं सावधानियों के पश्चात् भी यह

आशंका बनी ही रहती है कि कैपसूल कहीं पृथ्वी से टक्कर न खा जाय। इसी कारण इसे पृथ्वी पर न उतारकर पानी पर उतारा जाता है। इसकी बनावट में एक और विशेषता है कि यह पानी, पृथ्वी और वायुमण्डल सभी पर कार्य करता है। पानी पर उतरते ही कैपसूल स्वयं ही अपने लौटने की सूचना रेडियो-संकेतों द्वारा देता है।

कैपसूल में सभी यंत्र स्वचालित होते हैं, यहाँ तक कि यात्रा-सम्बन्धी हर प्रकार की सूचना स्वचालित यंत्रों द्वारा भेजी जाती है। पृथ्वी से भी कैपसूल से बराबर सम्पर्क बनाय रखा जाता है। आवश्यकता होने पर स्वयं यात्री भी इन यंत्रों को नियंत्रित कर सकता है। इस कैपसूल में भीतर बिजली के तारों का जाल-सा बिछा रहता है। अतः एक बार इसमें बैठने के पश्चात् यात्री अधिक हिल-डुल नहीं सकता। इस कैपसूल का भार २५ और ३० मन के बीच में होता है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को पार करने के लिए कैपसूल को बहुत अधिक वेग से उड़ाया जाता है।

इन कैपसूलों के अतिरिक्त अब तो अंतरिक्ष में एक स्टेशन बनाने का कार्यक्रम चल रहा है। धरती से चाँद तक जाने के लिए एक ही उड़ान में चन्द्रमा तक नहीं पहुँच सकते। चाँद तक जाने और वहाँ से वापस आने के लिए हजारों टन पेट्रोल आदि की आवश्यकता पड़ेगी। कैपसूल का स्वयं का वजन

३० मन के करीब होता है। इसपर इतना अधिक पेट्रोल आदि लेकर जाना कठिन है। ईधन के अतिरिक्त यात्री के लिए आवश्यक भोजन-सामग्री, पानी तथा आक्सीजन का भी पर्याप्त बोझ हो जाएगा। चाँद के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रहों तक पहुँचने की अवधि तो और भी ज्यादा होगी। इसलिए वर्तमान परिस्थिति में चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए बीच में ऐसा स्थान बनाया जाना आवश्यक हो गया है जहाँ पृथ्वी से आवश्यक सामग्री पहुँचाई जा सके और वह चन्द्रमा की ओर जानेवाले यान को इस स्थान पर पहुँचने पर आवश्यक सामग्री दे सके।

अब देखना यह है कि इन अंतरिक्ष-स्टेशनों का रूप और आकार कैसा होगा तथा इनका निर्माण किस प्रकार किया जायगा? विशेषज्ञों का कथन है कि पृथ्वी से पाँच भारवाही विमान एक राकेट के साथ उड़ान भरकर लगभग १,०७५ मील की दूरी पर एक गतिमान स्टेशन का निर्माण करेंगे जो कृत्रिम चाँद की भाँति बराबर पृथ्वी की परिक्रमा करता रहेगा। पाँचों भारवाही विमानों में समस्त आवश्यक सामान रहेगा। साथ में यात्रा करनेवाले कुशल इंजीनियर इसके बारे में भली प्रकार से जानकारी रखेंगे। अंतरिक्ष में स्टेशन-निर्माण करने में वैकुअम के कारण भारी कठिनाई होगी। अधर में प्रत्येक वस्तु लटकती रहेगी, जहाँ किसी एक वस्तु से दूसरी वस्तु टकराई वहीं कागज की नाव की तरह हिलने-डुलने लगेगी। इसलिए इस स्टेशन के निर्माण के लिए प्रत्येक वस्तु एक-दूसरे

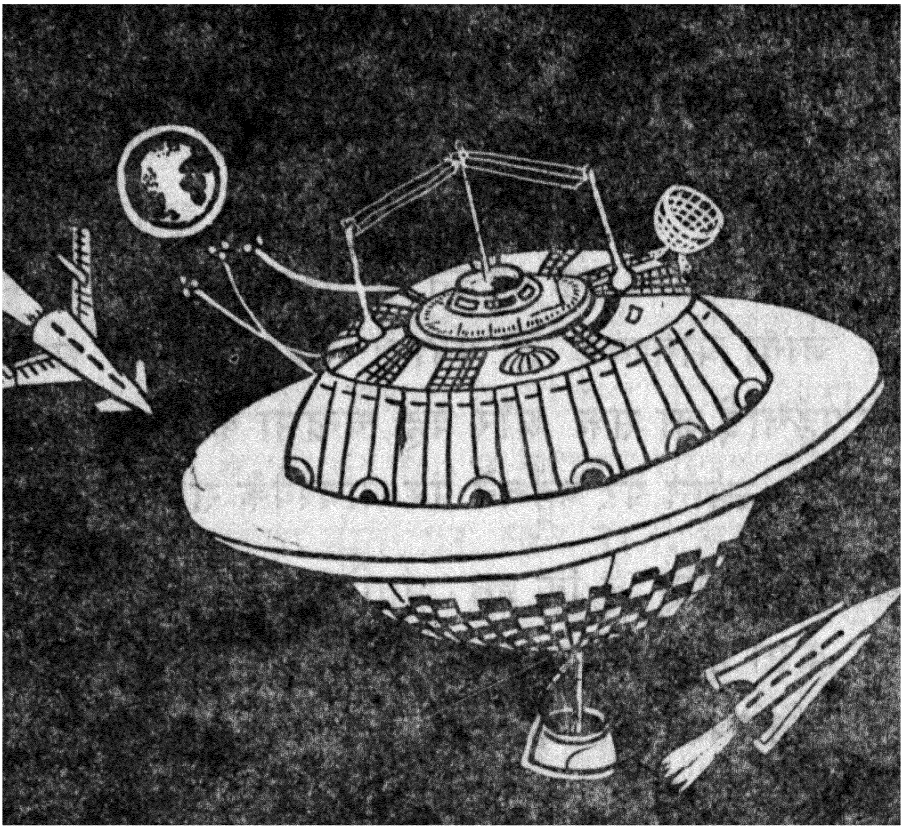

से मजबूत नायलान के तंतुओं से बँधी रहेगी। यह समस्त वस्तुएँ नायलान के एक विशाल जाल के भीतर ही रहेंगी।

अंतरिक्ष-स्टेशन के आकार के लिए वैज्ञानिकों ने एक गोल पहिया चुना है। इस पहिये को धुरी के चारों ओर आसानी से घुमाया जा सकता है। इस घुमाव से अंतरिक्ष स्टेशन में केन्द्रापसारी शक्ति उत्पन्न होगी जो कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण के सदृश काम करेगी। इस पहिये का व्यास २५० फुट

के आसपास होगा और परिधि जो भीतर से खोखली होगी लगभग २५ फुट चौड़ी होगी। पहिये की केन्द्र-धुरी तक तीन मुख्य तानें भी अन्दर से खोखली होंगी और कई पाइप कनेक्शन भी होंगे। परिधि के खोखले भाग में ही प्रयोगशालाएँ तथा अन्य कक्ष होंगे।

अंतरिक्ष-स्टेशन पृथ्वी की परिक्रमा करते समय पूर्ण संतुलित अवस्था में होंगे। इनके राकेट इंजिन भी बन्द अवस्था में होंगे। स्टेशन के अन्दर सभी कुछ भारहीनता की अवस्था में होगा और सभी वस्तुएँ तैरती रहेंगी। स्टेशन को उसकी केन्द्र-धुरी के चारों ओर विद्युत् इंजिन की शक्ति से घुमाव-गति दी जायेगी जिससे केन्द्रापसारी शक्ति उत्पन्न होगी। यही शक्ति समस्त वस्तुओं एवं व्यक्तियों को परिधि की दीवारों की ओर आकर्षित करेगी। इस प्रकार गुरुत्वाकर्षण की समस्या सुलझाई जा सकेगी।

इसी सिलसिले में जिस दूसरी बड़ी समस्या का सामना करना होगा, वह होगी आवश्यक गर्मी, प्रकाश तथा चालक शक्ति। इन सबके लिए सूर्य-रश्मियों का उपयोग करना होगा। इन रश्मियों को बड़े-बड़े प्यालेनुमा शीशों से परावर्तित करके पाइप संस्थानों पर केन्द्रित किया जायेगा। इन प्यालेनुमा शीशों में तरल पदार्थ भरा रहेगा जो गर्मी पाकर भाप बन जायेगा। यह भाप बिजली उत्पन्न करनेवाले यंत्रों को सक्रिय करेगी। इस प्रकार इस समस्या का समाधान किया जायेगा।

अंतरिक्ष-स्टेशन पर अनेक इंजीनियर रहेंगे। आवश्यकता पड़ने पर वे स्टेशन के भीतर-बाहर भी आ-जा सकेंगे। इसके लिए उनकी पोशाक उस वातावरण के अनुकूल ही होगी। इनकी पोशाक गोताखोरों जैसी होगी। इसका मुख्य भाग एक पीपे की शक्ल का विशेष धातु का बना होगा जिसका अस्तर एयर टाइट पर्दे का होगा। अपने हाथ-पैरों को सुगमता से मोड़ने के लिए पोशाक में काफी गुंजाइश होगी। पोशाक के भीतर हवा का दबाव ७ पौंड प्रति वर्ग इंच रखा जायेगा जोकि पृथ्वी पर के सामान्य दबाव का लगभग आधा होगा। आधे दबाव की पूर्ति के लिए आक्सीजन की मात्रा २० प्रतिशत से ४० प्रतिशत कर दी जायेगी। यात्री की पीठ तथा सीने पर एक-एक राकेट मोटर फिट रहेगी जिससे वह सुगमता के साथ इधर से उधर चल सके। यात्री के जूतों में धातु चुम्बकीय शक्ति रहेगी तथा धातु के ही नाखूनी पंजे भी होंगे।

अंतरिक्ष में केवल एक स्टेशन से तो काम चलेगा नहीं, कई स्टेशन स्थापित करने पड़ेंगे। अतएव एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक जाने के लिए 'कायाक' नामक यान का निर्माण किया गया है जो एक टैक्सी का काम किया करेगा। इस यान का आकार एक सिलिण्डर जैसा होगा जिसके दोनों सिरों पर राकेट इंजिन लगे होंगे, जिससे यह आगे भी जा सके और पीछे भी आ सके। यह यान अंतरिक्ष-स्टेशन के धुरी-केन्द्र से जुड़

जायेगा जिससे भीतर से लोग आसानी से इसमें आकर बैठ सकें।

अंतरिक्ष-स्टेशन-निर्माण की रूपरेखा उपर्युक्त पंक्तियों में दी गई है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि एक अंतरिक्ष-स्टेशन के निर्माण पर कितना खर्च उठाना पड़ेगा। अनुमान है कि एक स्पेस-स्टेशन की त्रिखण्डी राकेट-यान-सहित स्थापना करने में लगभग १५ अरब रुपया लगेगा और यह स्टेशन लगभग १० वर्ष में पूरा किया जा सकेगा।

यदि हम अंतरिक्ष-स्टेशन पर होनेवाले व्यय को तुलना उसकी उपयोगिता से करें तो हमें अधिक निराश नहीं होना पड़ेगा। इस स्टेशन से जहाँ एक ओर मार्ग-भ्रष्ट वायुयानों एवं जलयानों की खोज की जा सकेगी, वहीं वायुमण्डलीय परिस्थितियों का दिग्दर्शन तथा जलवायु तथा ऋतुओं आदि की पूर्वसूचना भी मिल जायेगी।

अंतरिक्ष-स्टेशन बेधशालाओं का काम भी कर सकेगा। अंतरिक्ष के रहस्यों को इस स्थान से सुगमतापूर्वक जाना जा सकेगा। ग्रहों तथा नक्षत्रों की यात्रा के लिए अंतरिक्ष-स्टेशन से राकेट यान कम खर्च में छोड़े जा सकेंगे। अंतरिक्ष-स्टेशन से नक्षत्रों की गतिविधि का निरीक्षण सुगमता से किया जा सकेगा और उनके फोटो भी लिये जा सकेंगे। अंतरिक्ष-स्टेशन से ग्रह-नक्षत्रों के टेलीविजन चित्र पृथ्वी पर प्रसारित किये जा सकेंगे।

इस स्टेशन के बन जाने से दोनों तरफ की यात्रा सुगम हो जायेगी। यह हो सकता है कि कुछ इनसे भी द्रुतगामी यानों का निर्माण भविष्य में हो जो इस यात्रा को कम समय में पूरी कर सकें। तब भी अंतरिक्ष-स्टेशन अत्यन्त लाभदायक होगा।

भविष्य में और भी क्या-क्या हो यह सोचा नहीं जा सकता। आज जिसे हम कल्पना समझ रहे हैं, वही कल वास्तविक बन जाये यह कौन जानता है ?

प्रश्न

१. अंतरिक्ष-यात्रा में सबसे पहले किस देश ने सफलता प्राप्त की ?
२. कैपसूल की बनावट किस प्रकार की है ?
३. कैपसूल में यात्री के लिए क्या सुविधाएँ होती हैं ?
४. अंतरिक्ष-स्टेशन की क्यों आवश्यकता है ?
५. अंतरिक्ष-स्टेशन की कल्पना के अनुसार यह स्टेशन किस प्रकार का होगा और वह कैसे बनेगा—इसपर एक लेख लिखो।

: ३ :

उड़नतश्तरियाँ

आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व संसार के समस्त देशों में विशेषतः अमेरिका में कुछ सनसनीपूर्ण खबरें फैली थीं। ये खबर उड़नतश्तरियों के सम्बन्ध में थीं, जो अमेरिका में कई बार दिखाई पड़ी थीं। ये उड़नतश्तरियाँ क्या थीं—ये वास्तविक थीं अथवा काल्पनिक— यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु कुछ समय तक के लिए इन तश्तरियों के कारण अमेरिका की जनता का मानसिक संतुलन डावाँडोल हो गया था।

२४ जून, १९४७ को अमेरिका के एक व्यापारी ने अपने निजी जहाज में उड़ते हुए आकाश में तश्तरियों जैसे आकार

के जहाज देखे जो विचित्र करतब कर रहे थे। ये जहाज बहुत अधिक चमकदार थे और बहुत तेज़ गति से उड़ रहे थे। वाशिंगटन पहुँचकर व्यापारी ने यह समाचार वहाँ के निवासियों को बताया। इन वायुयानों के सम्बन्ध में समाचार सुनकर पूरे नगर में हलचल मच गई। बाद में तो अमेरिका के अन्य नगरों में भी जब ये तश्तरियाँ दिखाई दीं तो उससे पूरे महाद्वीप में ही तहलका-सा मच गया।

बीच में कुछ समय के लिए इनकी चर्चा कम हो गई। किन्तु ७ जनवरी, १९४८ को एक रहस्यमय विमान को देखकर उसका पीछा किया गया। पीछा करनेवाले विमान-चालक ने उस अज्ञात और रहस्यमय विमान का २०,००० फुट तक की ऊँचाई तक पीछा किया। कुछ समय तक रेडियो के द्वारा वह संवाद भेजता रहा किन्तु बाद में यह संवाद आना बन्द हो गया। संध्या के समय वह कप्तान अपने ट्टे हुए जहाज में एक जंगल में मृत अवस्था में पड़ा मिला। इस दुर्घटना से चारों ओर सनसनी फैल गई।

अब तो अमरीकी वायुसेना ने संगठित रूप से इन अज्ञात विमानों को, जिनका नाम यू० एफ० ओ० (Unidentified Flying Object) पड़ गया था, देखना आरम्भ किया; किन्तु इस कार्य में वे सफल नहीं हो सके। अमरीकी वायुसेना-सचिव ने ४ जन १९४८ को उन विमानों का स्पष्टीकरण देने में

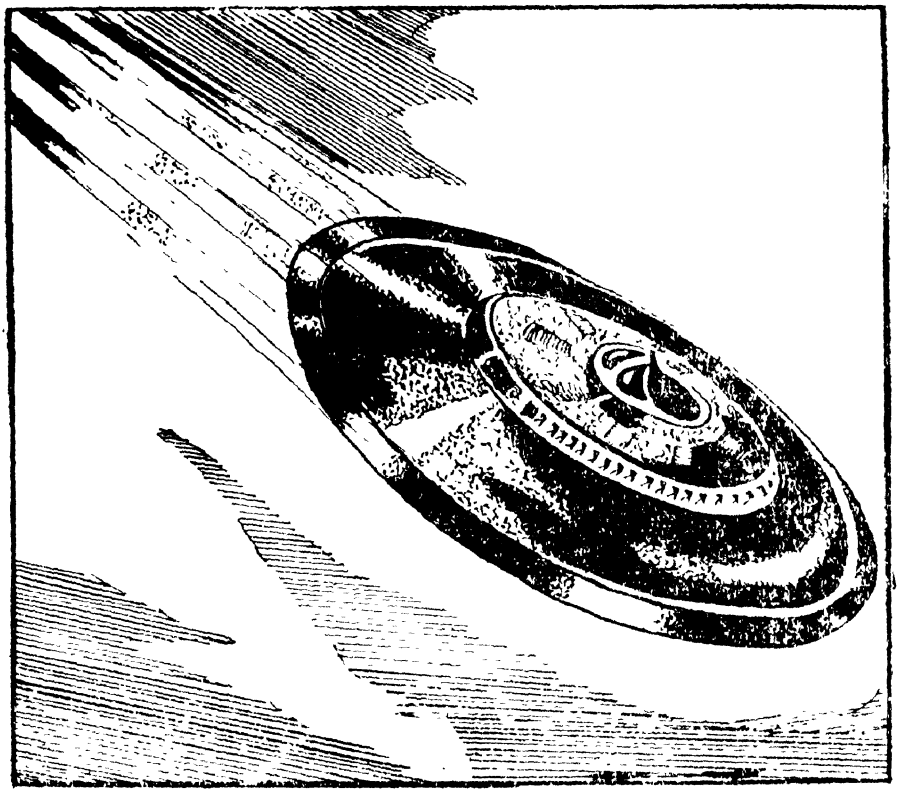

असमर्थता प्रकट कर दी। बाद में कनाडा में भी जब ये तश्तरियाँ दिखाई दीं तो वहाँ के लोगों ने भी उनका पता लगाने का निश्चय किया। अमेरिका और कनाडा के जिन लोगों ने इस सम्बन्ध में खोज की थी वे परिणाम में केवल इतना ही निष्कर्ष निकाल पाये कि वे रहस्यमय विमान जो तश्तरियों की शक्ल के हैं, लगभग १०० फुट व्यास वाले हैं। इनसे छोटी भी तश्तरियाँ साथ में रहती हैं। उड़ते समय वे

तश्तरियाँ कभी सीधी, कभी ऊपर को, कभी पीछे को, कभी हज़ारों मील की रफ्तार से उड़ती थीं और कभी स्थिर हो जाती थीं। कुछ राकेट के समान १०० फुट से १,००० फुट तक लम्बी भी थीं जो सम्भवतः इन उड़नतश्तरियों को लेकर उड़ती थीं। कुछ विमान हरे रंग के, आग के गोले-जैसे बिना किसी प्रकार की आवाज़ किये भी दिखाई दिए। ये कभी तैरते नज़र आते थे और कभी फटते हुए।

सन् १९५० में 'बिहाइण्ड दि फ्लाइंग सॉसर्स' (Behind the Flying Soccers)नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें बतलाया गया कि कुछ उड़नतश्तरियों में से जो मैक्सिको और कोलोरेडो में गिरकर चूर्ण हो गई थीं, ३८ इंच से ४० इंच तक लम्बे अजीब पोशाक पहने बौनों के आकार के चालकों का शव भी मिला। अनुमान से वे शुक्रग्रह के निवासी जान पड़ते थे। किन्तु १२ सितम्बर १९५२ को पश्चिमी वर्जीनिया में एक उड़नतश्तरी देखने के बाद एक राष्ट्ररक्षक एवं कुछ अन्य लोगों ने एक भयावने दानव को भी देखा जिसकी ऊँचाई ९ फुट, चेहरा लाल तथा आँखों के बीच १ फुट का अन्तर था। उड़नतश्तरियों के कुछ फोटो भी खींचे गए। उनमें से कुछ तो केवल धोखा देने के लिए थे, कुछ कैमरे को खरावी के कारण अस्पष्ट थे तथा कुछ जो साफ थे उनका स्पष्टोकरण नहीं हो सका। १९५३ के पश्चात् इन तश्तरियों का दिखाई देना बन्द हो गया।

इन विचित्र विमानों का रहस्य अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है। कुछ लोगों ने यह अनुमान भी लगाया था कि सम्भवतः ये दूसरे देशों के जासूसी विमान हैं। लेकिन इस अनुमान को तत्कालीन प्रेसीडेण्ट ट्रूमैन ने निराधार बतलाया था। फिर यह अनुमान लगाया गया कि ये विमान मंगल, शुक्र या अन्य ग्रहों से आनेवाले विमान हैं। इस तर्क की पुष्टि में यह बतलाया गया कि जब पृथ्वी से अन्य ग्रहों पर जाने के लिए तैयारी की जा रही है तो क्या अन्य ग्रहों के निवासी पृथ्वी पर नहीं आ सकते। वे अधिक सभ्य हो सकते हैं, उन्होंने अन्तरिक्ष-यान बना लिये होंगे। पृथ्वी पर ही दिलचस्पी होने के कुछ कारण भी बतलाये गये—

१. अन्तरिक्ष-यात्रियों को भय है कि कहीं अणु अस्त्र बनाने में सफलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे पृथ्वीवासी उन पर आक्रमण न कर दें। इसके अतिरिक्त उन्हें इस बात का भी भय है कि यदि स्वयं उन्होंने पृथ्वी को नष्ट किया तो इसका प्रभाव उन पर भी पड़े बिना न रहेगा।

२. उन्हें यह भी भय है कि पृथ्वीवासी सम्भवतः अन्तरिक्ष में अपने उपनिवेश बनायें। दूसरी ओर वे यह भी सोचते होंगे कि पृथ्वीवासियों से शान्ति-सम्बन्ध स्थापित किये जायँ।

३. सम्भव है जलवायु के खराब होने के कारण वहाँ के निवासी दूसरी अच्छी जलवायु में जाना चाह रहे हों।

अन्तरिक्ष-यान के सम्बन्ध में इतनी अटकलें लगाने के पश्चात् भी अब इसे केवल काल्पनिक वस्तु ही माना जा रहा है। जिन लोगों ने इन यानों या तश्तरियों को देखा होगा, उन्होंने भ्रमवश कोई दूसरी वस्तु देखकर उन्हें उड़नतश्तरियाँ समझ लिया होगा। हो सकता है उन्होंने काफी ऊँचाई पर उड़नेवाले जेट विमान को ही देखा हो अथवा कोई गुब्बारा देखा हो अथवा वायुमण्डल में बने बर्फ के रवों पर पड़े सूर्य के प्रकाश को वे उड़नतश्तरी समझ बैठे हों।

सन् १९५३ के पश्चात् उड़नतश्तरियों के बारे में कोई बात नहीं सुनाई पड़ी। यदि वास्तव में अन्तरिक्षवासी हम पृथ्वीवासियों की प्रगति से चिन्तित थे, तो अब तो उन्हें और भी चिन्तित होना चाहिए, क्योंकि अब तो पृथ्वीवासी अन्तरिक्ष-यात्रा में भी सफल हो गए हैं। यदि उनकी चिन्ता वास्तव में सही होगी तो फिर हमें उड़नतश्तरियाँ दिखाई देंगी।

प्रश्न

१. उड़नतश्तरियाँ सबसे पहले किस प्रकार दिखाई पड़ीं ?

२. उड़नतश्तरियों की बनावट किस प्रकार की बताई गई थी ?

३. क्या ये तश्तरियाँ वास्तविक थीं ? इनके वास्तविक होने के सम्बन्ध में क्या प्रमाण दिये गये ?

४. अंतरिक्ष-यान किस परिस्थिति में पुनः दिखाई दे सकते हैं ?

: ४ :

कृषि-उन्नति में रेडियो-सक्रिय किरणें

राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी भारत को बहुत-सी बातों के लिए दूसरे देशों का मुख ताकना पड़ता है। मशीनरी का बहुत-सा सामान विदेशों से मँगाया जाता है। आधुनिकतम यंत्रों का यहाँ लगभग अभाव है, जिनके लिए हमें दूसरे देशों पर आश्रित रहना पड़ता है। और तो और, अन्न के उत्पादन में भी भारत आत्मनिर्भर नहीं है। प्रतिवर्ष सैकड़ों टन गेहूँ आस्ट्रेलिया और अमेरिका आदि महाद्वीपों से मँगाया जाता है। यद्यपि भारत इस दिशा में बहुत प्रयत्नशील है किन्तु अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ की प्रति एकड़ उपज बहुत कम है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि विज्ञान के आधु-

निकतम यंत्रों एवं प्रयोगों का पूर्ण उपयोग भारत में नहीं हो पाता। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इस देश को भी वे ही साधन उपलब्ध हो जायँ तो आत्मनिर्भर होने के अतिरिक्त दूसरे देशों को अन्न निर्यात करने में भी हम समर्थ हो जायँगे।

कृषि की उन्नति के लिए नवीनतम यन्त्रों, रासायनिक खाद आदि की तो आवश्यकता है ही, साथ ही हाल ही में जो अनुसंधान हुए हैं उनसे यह भी सिद्ध हो गया है कि रेडियो समस्थानिकों से विकीरित होनेवाली रेडियो-सक्रिय किरणें यदि सीमित मात्रा में उगते हुए पौधों पर डाली जायँ तो पौधों, फलों और फूलों में बड़ी उन्नति होगी। हमारे देश में भी अनेक प्रयोगशालाओं में इस सम्बन्ध में प्रयोग किये जा रहे हैं।

रूस में रेडियो-सक्रिय किरणों का प्रभाव बीज के ऊपर डालकर देखा गया था। बोने से पूर्व चुकन्दर के जिन बीजों पर रेडियो-सक्रिय किरणों की बौछार की गई थी, उनकी उपज साधारण बीजों की अपेक्षा २५ प्रतिशत अधिक हुई। यह बौछार एक निश्चित अवधि तक ही की जाती है। इसी प्रकार रेडियो समस्थानिक के घोल में भी कुछ देर तक बीजों को डाल रखने के पश्चात् यदि उन्हें बोया जाता है तो उससे भी फसल में वृद्धि होती है।

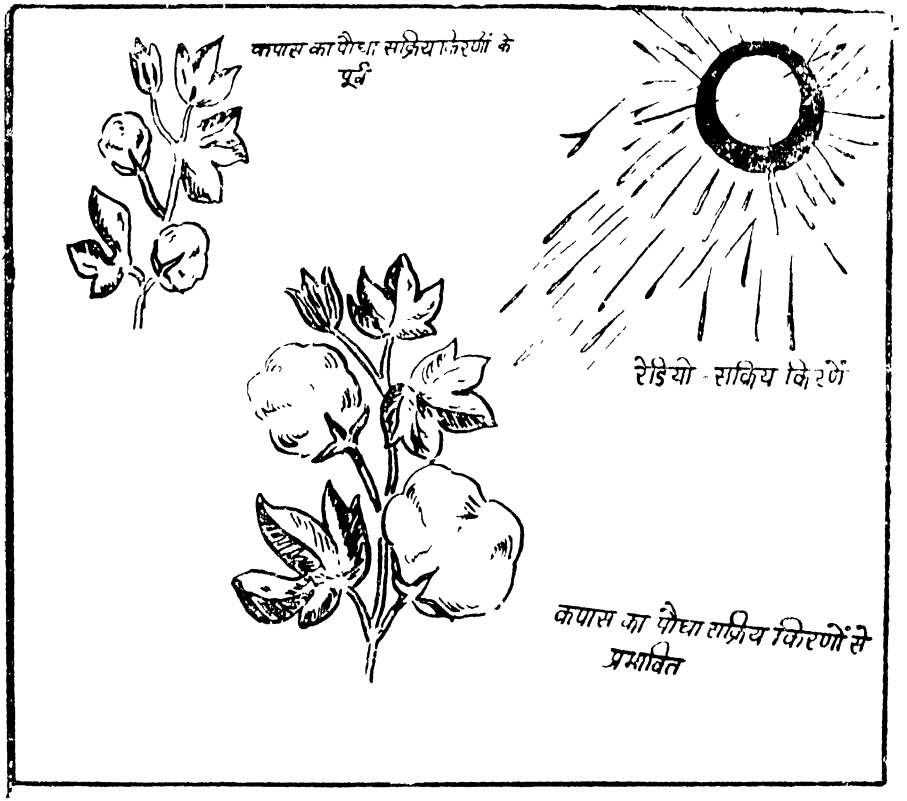

इन किरणों का उपयोग केवल कृषि-उत्पादन में वृद्धि करने के लिए ही नहीं किया जाता, अपितु इनसे नई नस्ल के पौधे भी तैयार किये जाते हैं। कास्मिक किरणें, एक्सरे किरणें पौधों के कोषतन्तुओं में परिवर्तन करके नई नस्ल के पौधों में परिवर्तित कर देती हैं। कास्मिक किरणें तो वंश-परम्परा में परिवर्तन करती ही आ रही हैं, किन्तु उनका यह परिवर्तन अत्यन्त धीमा होता है। वैज्ञानिकों ने रेडियो समस्थानिकों से

विकीरित होनेवाली किरणों की मदद से इस कार्य को सुगम और द्रुततर कर दिया है। इन किरणों से पौधों की पत्तियों, रेशों आदि आकार-प्रकार में भी सुधार किया जा सकता है।

रेडियो समस्थानिकों से विकीरित रेडियो-सक्रिय किरणे यदि सीमित मात्रा में सुरक्षित अनाज, मांस, अण्डे, फल, मछली पर डाली जायँ तो उनसे कीटाणुओं का नाश होता है। अन्न, फल, अण्डे आदि को दूषित करनेवाले कीटाणु इन किरणों के प्रभाव से स्वयं तो नष्ट हो ही जाते हैं, साथ ही उनके अण्डे भी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अब इन किरणों के प्रभाव से शीघ्र दूषित होनेवाले पदार्थों को बचाकर सुरक्षित रखा जा सकता है और उनमें ताज़गी बनी रह सकती है। इसी प्रकार अधिक गर्मी के कारण जिन आलुओं में अंकुर फूट आते हैं उनके ऊपर भी यदि इन किरणों की बौछार की जाय तो अंकुर न फूटें। अतएव ऐसे पदार्थों का आयात-निर्यात भी सुगम हो गया है, साथ ही उनकी टिकाऊ शक्ति भी बढ़ गई है।

अनुसंधानकर्ताओं ने विविध जीव-जन्तुओं के ऊपर प्रयोग करके यह भी सिद्ध कर दिया है कि इन किरणों का कोई भी घातक प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर नहीं पड़ता। चूहों, कुत्तों और बन्दरों को रेडियो-सक्रिय किरणों से प्रभावित अन्न, मांस आदि खिलाया गया है। निरन्तर ऐसे ही भोज्य पदार्थों को

खाने के पश्चात् भी ऐसा कोई संकेत उनके स्वास्थ्य में नहीं दिखाई दिया जिससे उनके स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव प्रकट हो। अतः यह सन्देह करना कि इन किरणों का कोई घातक प्रभाव मनुष्य के शरीर पर पड़ेगा, निराधार है।

रेडियो समस्थानिक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोग भी है। भारतीय किसान को यों तो खाद बहुत कम मात्रा में नसीब होती है, जो उपलब्ध होती भी है, उसे खेतों में डालने की सही विधि किसान नहीं जानते। प्रायः किसान खेत को जोतते समय ही खाद डाल देते हैं। विभिन्न फसलों के लिए खाद देने का समय अलग-अलग होता है। इस बात की जानकारी किसानों को नहीं है। साथ ही वे यह भी नहीं जानते कि किस गहराई पर खाद डालकर अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है तथा खाद जड़ों में देना अधिक उपयोगी होगा अथवा पत्तियों के ऊपर घोल बनाकर छिड़क देना। आधुनिक कृषि के क्षेत्र में ऐसे अनेक प्रश्नों के संबंध में बराबर प्रयोग किये जा रहे हैं तथा रेडियो समस्थानिकयुक्त खाद के प्रयोग से यह ज्ञात किया जा सकता है कि खेत में कितनी गहराई पर खाद देने से पौधों के लिए लाभ होगा। गेहूँ, आलू तथा कपास आदि के पौधों पर जो प्रयोग किये गए हैं उनसे यह परिणाम निकला है कि गेहूँ के लिए खाद प्रारम्भ में ही देना उचित है, आलू के पौधों में प्रारम्भ में, तथा बाद में दोनों दशाओं में खाद देना

लाभकारक होता है। कपास की पत्तियों पर खाद के घोल का छिड़काव कलियों के निर्माण के समय अधिक उपयुक्त होता है।

इस प्रकार यदि कृषि में रेडियो समस्थानिक पदार्थों का उचित प्रयोग किया जाय तो कृषि की समस्याओं का समाधान बड़ी सुगमता के साथ किया जा सकता है। कृषि-वैज्ञानिक इस ओर बहुत अधिक सक्रिय हैं और आशा है कि उनका प्रयास सम्पूर्ण मानवता की सुख-समृद्धि के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा।

प्रश्न

१. भारत की कृषि-दशा के पिछड़े होने के क्या कारण हैं ?

२. रेडियो-सक्रिय किरणों से कृषि में किस प्रकार वृद्धि की जा सकती है ?

३. रेडियो समस्थानिकों के अन्य क्या उपयोग हैं ?

: ५ :

चाकलेट

चाकलेट का नाम हम सबने सुना होगा। बच्चों को तो इसका नाम बड़ा आकर्षक लगता है। इसकी एक टिकिया देकर बालकों को बड़ी सुगमता से प्रसन्न किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त चाकलेट के साथ हमने अपने जीवन की अनेक वस्तुओं का सम्बन्ध जोड़ लिया है। चाकलेटी रंग आज सभ्य संसार में बड़ा प्रसिद्ध हो गया है। चाकलेटी कपड़ा, चाकलेटी मिठाई, चाकलेटी पेय हमको स्थान-स्थान पर मिलेंगे। इतनी जनप्रिय वस्तु कैसे बनाई गई, इसके गुणों का अनुसंधान कैसे हुआ, आदि प्रश्नों का उत्तर हममें से बहुत कम लोग दे सकेंगे।

दक्षिणी अमेरिका की अमेजन और ओरनिको नदियों को घाटियों में एक वृक्ष पाया जाता है, इसे कोको कहते हैं। इसी कोको से चाकलेट बनाते हैं। अब तो नाइजीरिया, पूर्वी द्वीप-समूह, कैमरून, लंका और हालैण्ड में भी इसके वृक्ष पाए जाते हैं।

चाकलेट के पौधे बड़े और घनी छायावाले पेड़ों के नीचे लगाए जाते हैं। इसमें तीसरे वर्ष चमकीले फल लगते हैं, किन्तु इन्हें ५-६ वर्ष तक पकने नहीं दिया जाता। दसवें वर्ष से फलों की संख्या बढ़ने लगती है और ५० वर्ष तक बराबर बढ़ती रहती है। कोको का वृक्ष यद्यपि २५ से ४० फुट तक उग सकता है, किन्तु आमतौर पर इसे १५ फुट ऊँचा ही उगने दिया जाता है। यह वृक्ष रंग-बिरंगा होता है, जिसकी हरी, चमकदार चिकनी पत्तियाँ झंडियों के समान झूलती दिखाई पड़ती हैं। कोंपलों के रूप में ये पत्तियाँ गुलाबी रंग की होती हैं, जो अत्यन्त कोमल तथा नीचे की ओर झुकी होती हैं।

इसके गुलाबी, सफेद, ५ पंखुड़ियोंवाले आकर्षक फूलों में सुगन्ध नहीं होती। ये फूल गुच्छों में तनों से सटे हुए रहते हैं और पुरानी शाखाओं में अधिक लगते हैं। इन्हीं फूलों के निकट ७ इंच लम्बी फलियाँ लगती हैं। ये फलियाँ तनों में ही लगती हैं। कच्ची रहने की अवस्था में ये पहले हरे और बाद में गहरे लाल रंग की हो जाती हैं जिनके बीच में सुनहरी, लाल अथवा

हरे रंग की चित्तियाँ रहती हैं। तना रुपहला होता है जिस पर इन्द्रधनुष की रेखाएँ होती हैं।

यों तो प्रतिवर्ष हज़ारों फूल एक पेड़ में लगते हैं, किन्तु उनमें से १ प्रतिशत फलयुक्त होते हैं। गुच्छे में फलियों की संख्या २० से ४० तक होती है। ये फलियाँ कुछ तो अण्डाकार और कुछ खरबूजे की शक्ल की होती हैं, जिन पर कमरख के समान मोटे खुरदरे किनारे होते हैं। फली का वजन लगभग १ पौंड होता है। इसका गूदा खाने के काम आता है। इसमें से २०-३० दाने जो वजन में १ औंस के लगभग होते हैं, निकलते हैं। बहुत-से दानों को इकट्ठा करके टोकरियों में भरकर सुखाने के लिए रख दिया जाता है, जब तक कि उनमें से रस न निकलने लगे। फिर इन्हें धीमी आँच पर सेंका जाता है। इस प्रकार इनका रंग परिवर्तित होकर बादामी हो जाता है। ताजे बीज का स्वाद कड़वा होता है किन्तु सिकने पर द्रवित होकर इनका स्वाद बदल जाता है। उसी समय इसे सुगन्धित करने के लिए एसेंशल आइल मिलाया जाता है। बाद में बीजों को सुखाया जाता है और इनका छिलका हटाया जाता है। बीज के गूदे के टुकड़े करके उन्हें चक्कियों में पीसा जाता है जिससे उसमें से कोको बटर निकलने लगता है। यह भूरे रंग का पेय होता है जो चाकलेट मिठाइयों का आधार है।

सूखे ढेर को शक्कर मिलाकर फिर रगड़ा जाता है और बाद में रिफाइनिंग मशीन में इसे डालते हैं जहाँ रौलर्स में इसे चिकना बनाने के लिए पीसा जाता है। यही मिश्रण साँचों में डालकर ठण्डा किया जाता है। बस, चाकलेट तैयार हो जाते

हैं। इस मिश्रण में कोको बटर मिला देने से मीठे चाकलेट बनते हैं।

चाकलेट बड़ा गुणकारी पदार्थ है। इससे स्फूर्ति एवं शक्ति आती है। एक पौण्ड चाकलेट में २,३३५ केलौरी ऊर्जा पाई जाती है। आफिस के क्लर्क चाकलेट की एक केक खाकर स्फूर्ति से काम करते हैं। चाकलेट का $\frac{९}{१०}$ भाग शरीर में हजम हो जाता है। यह गोश्त से भी अधिक शक्तिदायक है; तभी ता इसे लाइनेऊस ने देवताओं का भोजन कहा है। कोको के बीजों में ५५ प्रतिशत मक्खन, २२ प्रतिशत श्वेतसार और १७ प्रतिशत अल्बूमिन और ग्लूटिन होता है।

कोको बटर सूखा, ठोस, रुचिकर पदार्थ है जो मक्खन की तरह भी उपयोग में लाया जाता है। इसके अनेक अन्य उपयोग भी हैं। शल्यचिकित्सा में, नहाने का साबुन तथा क्रीम आदि बनाने में यह बड़ा उपयोगी है।

चाकलेट का इतिहास भी बहुत पुराना है। इसकी सर्वप्रथम खोज १६वीं शताब्दी में स्पेनवासियों ने की जिनका इसके व्यापार पर एकाधिकार था। महँगी होने के कारण उस समय चाकलेट का प्रयोग वहुत कम किया जाता था। केवल औषधि के रूप में चाकलेट खाया जाता था। बाद में इसका पता डच और अंग्रेज़ों ने लगाया। दालचीनी, शक्कर आदि मिलाकर उन्होंने चाकलेट को अधिक स्वादिष्ट बना दिया और

इस प्रकार वह औषधि न रहकर खाने के काम आने लगा। इंगलैण्ड में स्थान-स्थान पर चाकलेट हाउस खुलने लगे। प्रारम्भ में पेय पदार्थ के रूप में इसका बहुत प्रचलन था, बाद में पाउडर के रूप में भी मिलने लगा। चाकलेट की पहली फैक्टरी १७३० ई० में फ़ाई एण्ड सन्स ने ब्रिस्टल में खोली। बाद में जर्मनी और पेरिस में भी इसकी फैक्टरियाँ खुलीं।

चाकलेट के उपर्युक्त गुणों के कारण ही उस पर नये-नये आविष्कार किये जा रहे हैं और उसे अधिक रुचिकर तथा स्वादिष्ट बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रश्न

१. चाकलेट के पौधे किन-किन देशों में पाये जाते हैं ?

२. चाकलेट के क्या-क्या उपयोग हैं ?

३. चाकलेट में क्या-क्या गुण हैं ?

: ६ :

महान् वैज्ञानिक—सर आइजक न्यूटन

अपने खोज-कार्य से विज्ञान-जगत् में एक हलचल मचा देनेवाले प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन का जन्म सन् १६४२ में इंग्लैण्ड के एक छोटे-से गाँव में हुआ था।

अपनी बाल्यावस्था एवं छात्रावस्था में न्यूटन ने किसी विशेष प्रतिभा का परिचय नहीं दिया। किसे पता था कि यही बालक न्यूटन बड़ा होकर आधुनिक यंत्र-विज्ञान और ज्योति-विज्ञान का निर्माता बनेगा। वास्तव में उसीके अनुसंधानों पर यन्त्र-शास्त्र एवं इन्जीनियरिंग की सारी उन्नति आधारित है।

विद्यार्थी-जीवन में बालक न्यूटन को खेल-खिलौने का बड़ा शौक था। कील, काँटे, चाकू आदि लिए न्यूटन घण्टों

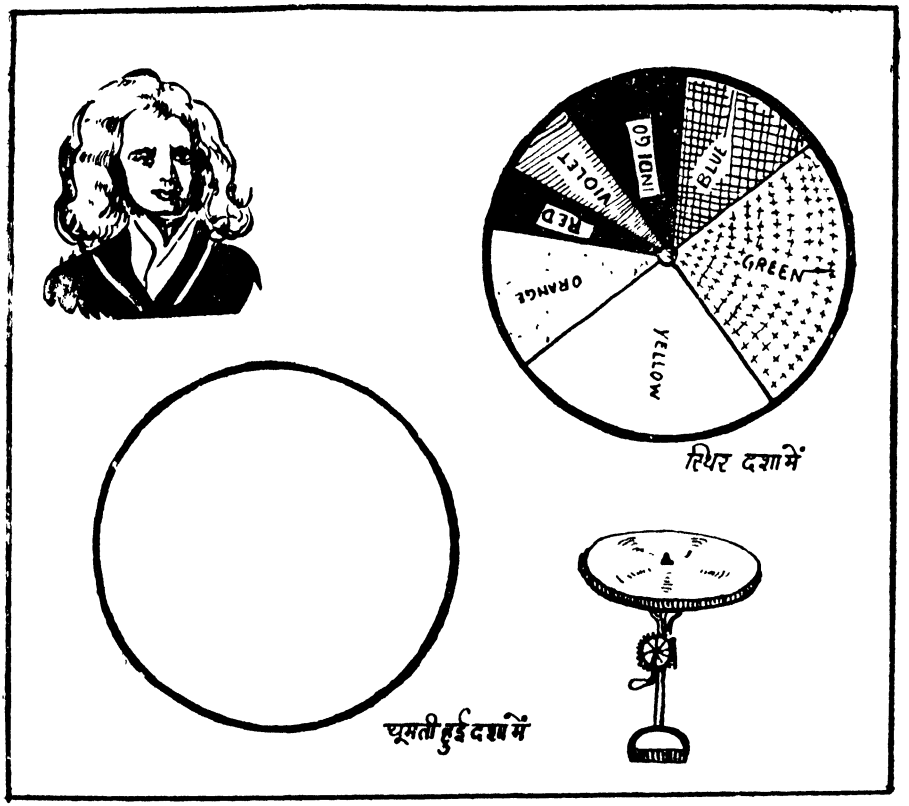

खिलौने बनाया करता था। पुस्तकों की नीरस विद्या में उसका मन कम लगता था। अपनी इस कला से न्यूटन ने घर के लोगों में अपनी बूढ़ी दादी को एवं पास-पड़ौस के लोगों को बहुत प्रसन्न कर लिया था।

खेल-खिलौनों के साथ-साथ न्यूटन को मशीनरी के कामों में भी बड़ी दिलचस्पी थी। गाँव की पवन-चक्की को देखकर उसने अपने हाथों से उस चक्की का एक माडल बनाया जो

कि हवा के मामूली झोंकों से चलती थी और उससे थोड़ा-बहुत अनाज भी पिस जाता था। इसी आयु में न्यूटन ने जल-घड़ी और धूपघड़ी का भी निर्माण किया। कहते हैं कि धूपघड़ी तो अभी भी उसके घर में रखी हुई ठीक समय देती है।

कुछ लोगों ने न्यूटन की दादी को उसे किसी घड़ीसाज के यहाँ घड़ी बनाने के काम को सीखने के लिए भेजने का परामर्श भी दिया था।

न्यूटन जब केवल १४ वर्ष का था तो उसके पिता की मृत्यु हो गई। वे एक बड़े जमींदार थे। पिता की मृत्यु पर जमींदारी का बोझ न्यूटन पर आ पड़ा। खेल-खिलौने, मशीनरी आदि में रुचि लेनेवाला बालक भला जमींदारी के झंझटों को कैसे उठा सकता था। जब इस ओर उसकी बिलकुल अरुचि देखी तो विवश होकर घरवालों ने उसे उच्च शिक्षा के लिए केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भेज दिया। न्यूटन अब अध्ययन में रुचि लेने लगा था। विशेषत: गणित और विज्ञान में उसकी बहुत रुचि थी। केम्ब्रिज में अध्ययन करते हुए न्यूटन ने गणित और विज्ञान का खूब अध्ययन किया।

न्यूटन बड़ा मननशील व्यक्ति था। प्रकृति के रहस्यों के सम्बन्ध में वह बराबर सोचा करता था। एक बार बगीचे में जब एक सेव के पेड़ से सेब टूटकर गिरा तो उसके मन में तुरन्त

यह विचार आया कि सेब इधर-उधर न गिरकर सीधे पृथ्वी पर ही क्यों आया ? इसी विचार ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त (Law of Gravitation) को जन्म दिया।

न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि ब्रह्माण्ड के सभी पिण्ड एक-दूसरे को अपनी ओर एक विशेष बल से आकृष्ट कर रहे हैं, जो उनके भार और बीच की दूरी पर निर्भर करता है। इसी नियम के अनुसार सूर्य के चारों ओर पृथ्वी तथा अन्य ग्रह चक्कर लगाते हैं, और चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। बचपन में जल-चक्की, घड़ी आदि का निर्माण करनेवाले न्यूटन ने युवावस्था में ग्रहों तथा नक्षत्रों की गति का रहस्योद्घाटन किया।

न्यूटन ने बाद में वस्तुओं की गति का भी गहन अध्ययन किया और अपने निरीक्षण के आधार पर उसने गति-सम्बन्धी तीन सिद्धान्तों को जन्म दिया। ये सिद्धान्त 'न्यूटन के तीन सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के द्वारा ज्योतिर्विज्ञान की गुत्थियों को सुलझाया तथा गति के नियमों के द्वारा यन्त्रविज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया। न्यूटन ने ही सर्वप्रथम इस रहस्य का उद्घाटन किया कि सूर्य की किरणों में जो श्वेत प्रकाश है वह वास्तव में इन्द्रधनुष के सातों रंगों से मिलकर बना है। इस तथ्य को न्यूटन ने अपने 'न्यूटन्स ह्वील' को तेजी से घुमाकर भी सिद्ध किया था।

प्रकाश के क्षेत्र में न्यूटन ने जो अनुसंधान किए उनसे विभिन्न ग्रहों के तापक्रम का पता लगा। उसीके अनुसंधान पर यह भी पता लगा कि उन ग्रहों पर कौन-कौन-सी गैस तथा पदार्थ उपलब्ध होते हैं। प्रकाश के वेग का अनुसंधान होने पर पृथ्वी से अन्य ग्रहों की दूरी का पता भी लगाया गया। न्यूटन के ये प्रयोग एवं अनुसंधान आज के वैज्ञानिकों का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। इस दृष्टि से विज्ञान जगत् न्यूटन का सदा ऋणी रहेगा।

अन्वेषण करने का न्यूटन का तरीका बड़ा मौलिक और विचित्र था। वह स्वयं अनुभव करने की चेष्टा करता था। बचपन में आँधी की रफ्तार मालूम करने के लिए पहले उसने हवा के रुख की ओर लम्बी कुदान ली। फिर हवा की विपरीत दिशा में वह कूदा और तीसरी बार जब हवा शान्त हो गई तो उसमें कूदकर उसने आँधी की रफ्तार का पता लगा लिया।

न्यूटन स्वभाव से बड़ा कोमल और विनम्र था। मूक पशुओं तक के प्रति उसके हृदय में दया एवं सहानुभूति थी। इस बात के प्रमाण में हमें उसके जीवन की वह घटना मिलती है जब न्यूटन एक दिन अपनी टेबल पर काम कर रहा था। २० वर्ष के उसके खोज-सम्बन्धी समस्त कागज टेबल पर रखे थे। उसका पालतू कुत्ता उसकी टेबल के नीचे बैठा था। किसी कार्य से न्यूटन बाहर गया। कुत्ते ने भी अपने स्वामी का

अनुसरण किया। लेकिन उसके उठने से टेबल हिली और उस पर रखी हुई जलती मोमबत्ती ने गिरकर समस्त कागजों को राख के ढेर में परिणत कर दिया। न्यूटन जब लौटकर आया तो यह देखकर उसे बड़ा धक्का लगा। लेकिन वह कुत्ते से क्या कहता। अन्य कोई व्यक्ति होता तो शायद कुत्ते को जान से मार देता, परन्तु उसकी पीठ थपथपाता हुआ वह केवल इतना ही बोला, "डायमण्ड, तुम नहीं जानते, कितनी बड़ी हानि तुमने मुझे पहुँचाई है।"

न्यूटन निरभिमानी व्यक्ति थे। अपनी अन्तिम अवस्था में उन्हें 'सर' की उपाधि मिली और वे पार्लियामैण्ट के सदस्य भी चुने गए। किन्तु प्रतिष्ठा और सम्मान का गर्व उन्हें छू तक नहीं गया था। उन्होंने स्वयं कहा था, "ज्ञान का महासागर तो अथाह है; मैंने तो उसमें से केवल दो-चार बूँदों का ही रसास्वादन किया है।" वे अपने को उस बालक के समान बताते थे जो समुद्र के किनारे के दो-चार पत्थरों को बीन लेता है; जबकि समुद्र के गर्भ में छिपे रत्नों तक उसकी पहुँच हो ही नहीं पाती।

अपने पंचभौतिक शरीर को ८५ वर्ष की अवस्था में सन् १७२७ में छोड़कर न्यूटन ने इस संसार से बिदा ली, किन्तु विज्ञान जगत् में अनेक अनुसंधानों एवं अद्वितीय सेवा के कारण उनका नाम सदैव अमर रहेगा।

प्रश्न

१. गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त क्या है ? यदि हम मिट्टी का एक ढेला ऊपर आकाश में फेंकते हैं, तो वह नीचे पृथ्वी पर क्यों आ जाता है ?

२. न्यूटन के गति-सम्बन्धी कौन-से नियम हैं ?

३. न्यूटन के चरित्र की कौन-सी विशेषताएँ थीं ?

४. कारण बताओ—

(अ) मोटर के यकायक रुकने पर सवारियाँ क्यों झटका खाता हैं ?

(ब) बन्दूक चलाते समय झटका क्यों लगता है ?

(स) फेंका हुआ पत्थर पृथ्वी पर क्यों आ जाता है ?

: ७ :

प्लेटिनम

कुछ समय पूर्व तक सोना संसार में सबसे मूल्यवान वस्तु समझा जाता था, किन्तु अब यह विचार बदल गया है। सोने से भी मूल्यवान जो वस्तु है, वह है प्लेटिनम।

दक्षिण अमेरिका के कोलम्बिया नामक स्थान पर आने-जानेवाले यात्रियों ने जब इस चाँदी के समान चमकनेवाली धातु को देखा तो वे इसके सम्बन्ध में कुछ जान न पाये। यह धातु न तो तेज भट्टियों में गलती थी और न घन की चोटों का इसके ऊपर कुछ प्रभाव होता था। सन् १७४१ में किसी धातु-विशेषज्ञ मित्र से इस धातु का नमूना पाने पर डा० ब्राउनिंग ने

इसे लन्दन की रायल सोसायटी के सुपुर्द किया और तब संसार को इस धातु के अद्‌भुत गुण और इसके मूल्य का पता लगा।

प्लेटिनम का यह नाम स्पेनिश शब्द 'प्लेटिना-डेल-पिण्टो' (पिण्टो नदी पर प्राप्त चाँदी-सी चमकवाली धातु) के आधार पर पड़ा। प्लेटिनम के अद्‌भुत गुण ज्ञात हो जाने पर इस धातु की खोज अन्यत्र भी होने लगी। आज यह धातु कनाडा, रूस के यूराल पर्वत, कोलम्बिया, दक्षिण अफ्रीका, टस्मानिया, अलास्का तथा जापान से प्राप्त की जाती है।

प्लेटिनम का भी अपना एक परिवार है जिसमें ६ मुख्य धातुएँ हैं। इनमें प्लेटिनम मुख्य है; फिर क्रमशः इरीडियम, ओस्मियम, पैलेडियम, रहोडियम, रूथोनियम के नाम आते हैं। इन धातुओं की सक्रियता एक-दूसरे से कम नहीं है। प्रत्येक पदार्थ के साथ ये धातुएँ क्रिया नहीं करतीं। इसी कारण खनिज धातुओं से शुद्ध रूप में इन्हें प्राप्त करने के व्यवसाय में बड़ी कठिनाई होती है। इस परिवार की सभी धातुएँ केवल अम्ल-राज (नमक और शोरे का तेज़ाब) में ही घुलनशील हैं। इनको शुद्ध रूप में लाने के लिए प्रायः इसी अम्ल में घोला जाता है। इस अम्ल में भी प्लेटिनम, पैलेडियम, रहोडियम और रूथे-नियम तो घुल जाते हैं परन्तु ओस्मियम और इरीडियम नहीं घुलते। शेष दो ओस्मियम और इरीडियम—जिसे ओस्मरीडियम कहते हैं—को जब जस्ते के साथ उच्च तापक्रम पर गर्म किया

जाता है तो एक धातु प्राप्त होती है जो अम्लराज में घुलनशील होती है। वाष्पीकरण के द्वारा इस क्रिया में बना ओस्मियम ओक्साइड ठोस रूप से इकट्ठा कर लिया जाता है, जिससे ओस्मियम प्राप्त होता है। घुलनशील भाग को अमानियम क्लोराइड (नौसादर) और नमक के तेजाब के घोल में डालने पर प्लेटिनम और इरीडियम अवक्षेप के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। प्लेटिनम औरों की अपेक्षा कम घुलनशील होने के कारण रवों के रूप में इकट्ठा कर लिया जाता है। इस प्रकार हम चार धातुओं को अलग-अलग प्राप्त कर सकते हैं—रहोडियम और रूथोनियम रासायनिक क्रियाओं द्वारा अलग की जाती हैं।

इस धातु की अनेक विशेषताएँ हैं। यह शीशे से दुगनी भारी होती है। एक फुट लम्बे, चौड़े और मोटे घन प्लेटिन म का वज़न १४ मन से भी अधिक होगा। इसे पिघलाने के लिए कम से कम १,७७३ से० ग्रे० ताप चाहिए। इसके अत्यन्त पतले तार खींचे जा सकते हैं। एक छटाँक प्लेटिनम से कई सौ मील लम्बा तार खिच सकता है। यदि हम प्लेटिनम की अधिक तापक्रम पर सोना, लोहा या ताँबे से क्रिया करायें तो हमें क्रमशः इनके धातु-संग्रह (alloy) प्राप्त होते हैं। प्लेटिनम रासायनिक क्रियाओं को तेज करने के काम भी आता है। प्लेटिनम विद्युत् का भी उत्तम चालक है अर्थात् इसमें से

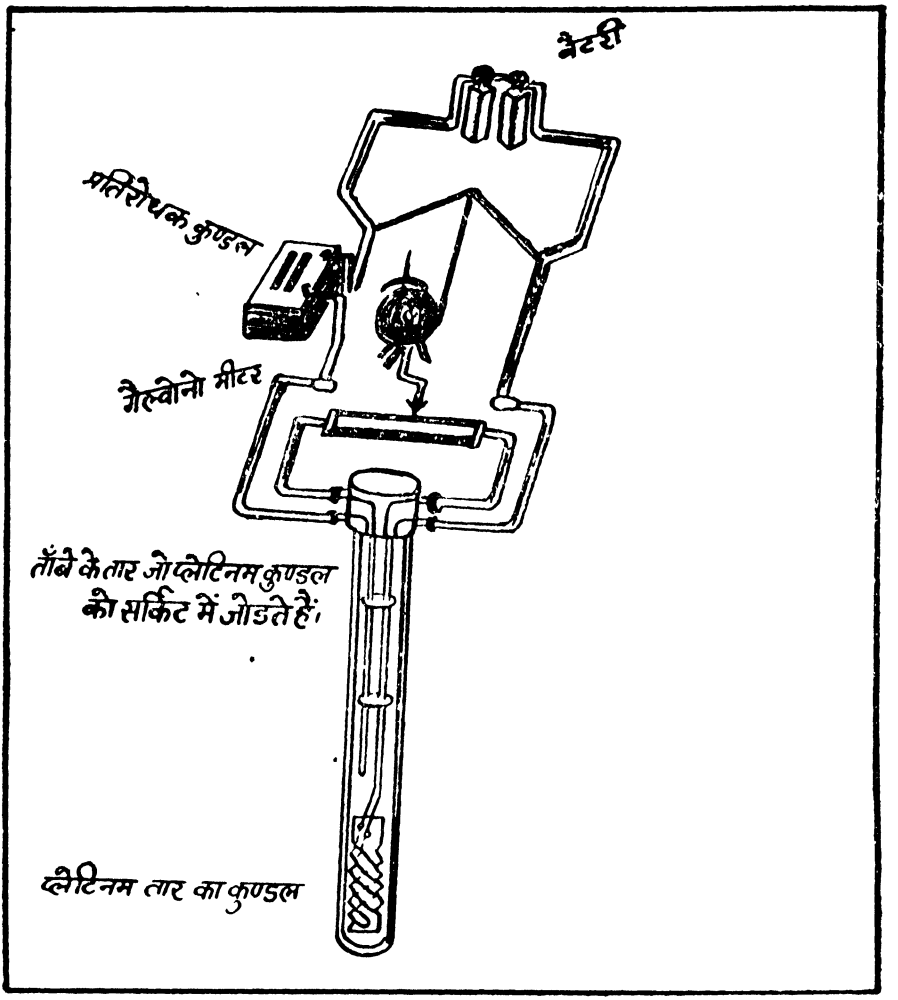

बिजली भी बड़ी आसानी से प्रवाहित होती है। प्लेटिनम पर तीव्र रासायनिक अम्लों का भी कोई असर नहीं होता। गर्म होने पर प्लेटिनम और काँच में समान प्रसारण होता है।

जिस ताप को नापने के लिए पारे के साधारण थर्मामीटर निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं, वहाँ प्लेटिनम के बने विद्युत् थर्मामीटरों का उपयोग होता है। प्लेटिनम थर्मामीटर की लम्बी नली सिलिका की बनी होती है ताकि ऊँचा ताप सह सके। इसी नली के अन्दर प्लेटिनम तार का छल्ला रखा रहता है। प्लेटिनम थर्मामीटर अधिक ताप सहने के कारण २००° से० ग्रे० से लेकर १३००° से० ग्रे० तक का तापक्रम सही-सही नाप सकते हैं।

अधिक ताप सहन करने की शक्ति के कारण काँच के उद्योग में भी यह धातु प्रयोग को जाती है। रूथेनियम के साथ मिलकर प्लेटिनम २,४००° सेण्टीग्रेड से भी अधिक ताप सहन कर लेता है। काँच-उद्योग में काम आनेवाली कुठालियाँ या हौज इसी धातु से बनते हैं। यह कुठालियाँ पिघलती नहीं और इनमें सिलिका आदि आसानी के साथ गलाया जा सकता है। पिघले हुए काँच को इसीके बने साँचे में डाला जाता है। अधिक तापक्रम सहन करने के कारण ये साँचे न तो टूटते हैं और न चटकते हैं। प्लेटिनम अधिक रगड़ (घर्षण) सहन कर लेता है, इस कारण यह रेयन-उद्योग में भी काम आता है। आसानी से न घिसने के कारण फाउण्टेन पैन की निबों की नोक भी प्लेटिनम और इरीडियम की मिश्रित धातु से बनाई जाती है।

प्लेटिनम शरीर के अन्दर जाकर विष नहीं हो जाता। अतः शल्यचिकित्सा में इसका प्रयोग कृत्रिम अस्थियों के रूप में किया जाता है। धनी लोग प्लेटिनम के दाँत इसीलिए लगवाते हैं क्योंकि इसपर खटाई आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सोने के साथ मिलाकर इसकी कमानी बनाई जाती है जो नकली दाँत बिठाने के काम आती है।

इस प्रकार यह बहुमूल्य धातु हमारे दैनिक जीवन के लिए उपयोगी है।

प्रश्न

१. प्लेटिनम की खोज सबसे पहले कहाँ हुई ? इसके महत्त्व को प्रतिपादित करने का श्रेय किसको है ?
२. प्लेटिनम के परिवार का वर्णन करो।
३. प्लेटिनम शुद्ध रूप में किस प्रकार प्राप्त किया जाता है ?
४. प्लेटिनम के क्या उपयोग हैं ? इसे सबसे मूल्यवान धातु क्यों माना जाता है ?

: ८ :

ट्रांजिस्टर

हम समझे बैठे हैं कि विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक सफलता रूस और अमेरिका को ही प्राप्त हुई है, इन्हीं दोनों देशों ने नवीनतम अनुसंधान किये हैं, किन्तु ऐसी बात नहीं है। और भी अनेक देश हैं, जिन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी सफलता प्राप्त की है और आश्चर्यजनक एवं जनोपयोगी आविष्कारों को जन्म दिया है। एशिया महाद्वीप का एक छोटा-सा देश होते हुए भी जापान ने ट्रांजिस्टर का आविष्कार करके संसार के प्रगतिशील देशों में अपना स्थान बना लिया है।

ट्रांजिस्टर का नाम हम सबने सुना होगा। ट्रांजिस्टर रेडियो-सैट लिए हुए मनचले नवयुवकों को भी हमने टेस्ट मैच की

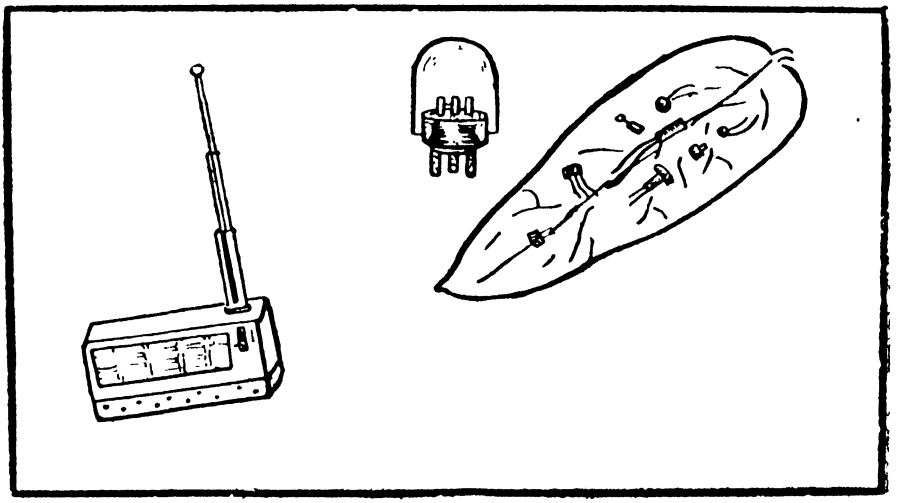

कॉमेण्ट्री सुनते हुए देखा होगा। लेकिन हममें से बहुत ही कम लोग ट्रांजिस्टर की रचना के सम्बन्ध में जानते हैं।

संसार के सभी पदार्थों को हम विद्युतीय गुण के आधार पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहले पदार्थ वे हैं जिनमें से धारा बड़ी आसानी से प्रवाहित हो जाती है। इस प्रकार के पदार्थों में ताँबे का नाम उल्लेखनीय है। ऐसे पदार्थ धारा के चालक कहलाते हैं।

दूसरे प्रकार के पदार्थ वे हैं जिनमें से धारा कुछ बाधा के साथ प्रवाहित होती है। ऐसे पदार्थ अर्द्धचालक कहलाते हैं।

तीसरे प्रकार के पदार्थ वे हैं जिनमें से विद्युतीय धारा बिलकुल ही प्रवाहित नहीं हो सकती। ऐसे पदार्थों में लकड़ी

और काँच प्रसिद्ध हैं। ट्रांजिस्टर अर्द्धचालक पदार्थों के बने होते हैं। अर्द्धचालकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है—पी तथा एन। जब धारा इन दोनों में से प्रवाहित होती है तो उसकी दिशा एक-दूसरे से विपरीत होती है। इस गुण का उपयोग करके ही ट्रांजिस्टर में कई अर्द्धचालकों का प्रयोग किया जाता है। दो अर्द्धचालकों को साथ रखने पर उनमें से धारा एक दिशा में अधिक तथा दूसरी दिशा में कम प्रवाहित होती है। इसको भली प्रकार समझने के लिए नाव का उदाहरण देखिए। नदी के प्रवाहित होने की दिशा में ही यदि नाव प्रवाहित की जाय तो उसकी गति तेज होगी और नदी की धारा की विपरीत दिशा में नाव के चलाने पर उसकी गति अत्यन्त मन्द होगी।

हम जानते हैं कि विद्युत् हमें दो चीजों से प्राप्त होती है—एक तो रासायनिक क्रिया करके अर्थात् सैल से और दूसरे डायनमो से। प्रथम द्वारा प्राप्त धारा डी. सी. अथवा एक-दैशिक धारा कहलाती है तथा दूसरे प्रकार से जो धारा प्राप्त होती है वह ए. सी. अथवा प्रत्यावर्ती धारा कहलाती है अर्थात् जिसकी धारा बदलती रहती है। जब धारा की दिशा बदलती रहती है तो प्रश्न यह उठता है कि धारा कितनी देर बाद बदलती है। यह धारा एक सैकण्ड में ५० से लेकर ६० बार तक बदलती है, जो इसकी कंपन-संख्या कहलाती है।

ट्रांजिस्टर धारा को एक दिशा में बदल देता है, अतः इसे ए. सी. धारा को डी. सी. धारा में बदलने के काम में लाया जाता है।

वायु में चलनेवाली रेडियो-तरंगों को, जिनकी दिशा बदलती रहती है और जो ए. सी. होती हैं, आवाज़ के रूप में परिवर्तित करने के लिए भी ट्रांजिस्टर का प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार रेडियो में रेडियो-वाल्व का काम तरंगों को ध्वनि में परिवर्तित करना है, ठीक इसी प्रकार ट्रांजिस्टर भी रेडियो-वाल्व का काम करता है।

ट्रांजिस्टर में प्रयोग होनेवाले अर्द्धचालक जिरेनियम तथा सिलिकन हैं। इनके उपयोग से ट्रांजिस्टर की क्षमता ९५ प्रतिशत तक पहुँच चुकी है। वाल्व के उपयोग से बहुत-सी ऊर्जा जो बेकार चली जाती थी, ट्रांजिस्टर के कारण बहुत कम बेकार जाती है।

ट्रांजिस्टर के उपयोग—ट्रांजिस्टर के कारण रेडियो, एम्प्ली-फायर, ध्वनि-रिकार्ड आदि का आकार आश्चर्यजनक रूप में छोटा हो गया है। ट्रांजिस्टर वाले रेडियो कलाई-घड़ी के आकार के भी बनने लगे हैं। इस रेडियो से भी हम वही लाभ उठा सकते हैं जो पूरे वाल्वों-युक्त रेडियो से उठाते हैं। एक छोटे आकार का ट्रांजिस्टर रेडियो छः आने की सूक्ष्म बैटरी से एक वर्ष तक काम कर सकता है।

ट्रांजिस्टर की आयु बहुत अधिक होती है। साधारण रेडियो के वाल्व थोड़े-से समय तक ही चलते हैं। ट्रांजिस्टर में कोई खराब होनेवाली चीज नहीं है। ट्रांजिस्टर रेडियो तत्काल बोलने लगता है, जबकि साधारण रेडियो गरम होने पर ही ध्वनि निकालता है। अतः ट्रांजिस्टर में ऊर्जा व्यर्थ नहीं जाती। जिन रेडियो-संकेतों को साधारण रेडियो नहीं पकड़ पाते, उन्हें ट्रांजिस्टर आसानी से पकड़ लेते हैं।

ट्रांजिस्टर के अन्य अनेक कार्य हैं। कास्मिक किरणों को गिनना तथा क्षुद्र विद्युत् के कणों को गिनना ट्रांजिस्टर द्वारा पूरा किया जाता है। ट्रांजिस्टर-युक्त यंत्र से कैंसर आदि के लिए शरीर के अन्दर भेजी गई रश्मियों की मात्रा नापी जाती है।

ट्रांजिस्टर का प्रयोग सूर्य-रश्मियों से विद्युत् बनानेवाले यंत्रों में भी किया जाता है। इसकी मदद से एक मोटर भी बनाई गई है जिसमें सूर्य-किरणों से बनी बिजली का उपयोग किया गया है।

इस प्रकार इस विलक्षण आविष्कार के अनेक उपयोग हैं।

प्रश्न

१. ट्रांजिस्टर का आविष्कार किस देश ने किया ?

२. विद्युतीय गुण के आधार पर पदार्थों को कितने भागों में विभाजित किया जाता है ?

३. ट्रांजिस्टर के कौन-कौन—से उपयोग हैं ?

: ६ :

शेषनाग के वंशज

हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में शेषनाग का उल्लेख आता है। कहा जाता है कि शेषनाग अपने हज़ारों फनों के ऊपर इस वसुधा को धारण किये हुए है। नागपंचमी पर्व पर इसीलिए हिन्दू-धर्मावलम्बी इन नाग-देवों की पूजा करते हैं।

जनमेजय ने अपने नाग-यज्ञ में पृथ्वी के सम्पूर्ण सर्पों की आहुति नहीं दे पाई थी। उनमें से जो इने-गिने शेष बचे थे उनमें वासुकि का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इन इने-गिने सर्पों के वंशज आज हज़ारों की संख्या में हमें दिखाई पड़ते हैं। रास्ते में चलते हुए झिझककर पीछे हटकर 'ओह बच गया' शब्दोच्चारण आपने अपने जीवन में चाहे न किया हो,

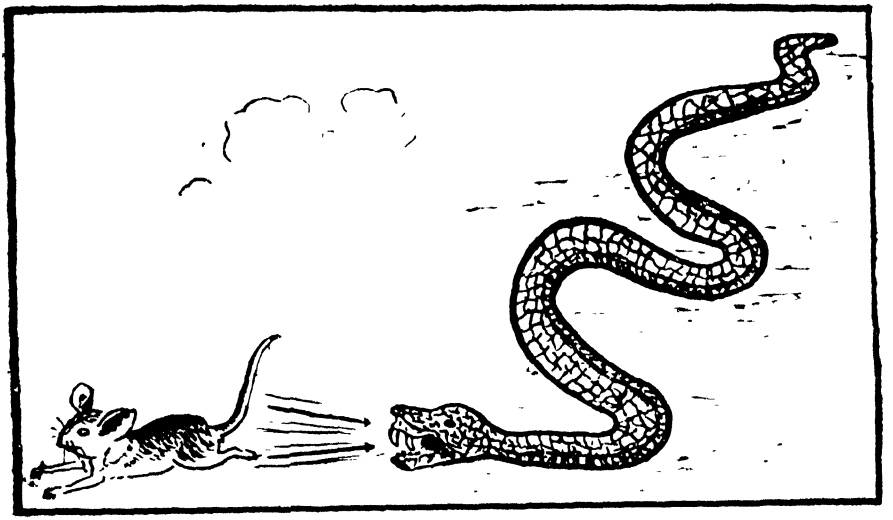

लेकिन अपने देहाती मित्रों के मुख से आपने अवश्य ही उनकी आपबीती सुनी होगी। कभी-कभी तो यह केवल भ्रम ही रह जाता है और तब हम कह देते हैं अरे, सर्प नहीं रस्सी है।

हम प्रत्येक सर्प को देखकर डर जाते हैं, पर प्रत्येक सर्प प्राणघातक नहीं होता। सर्पों की जितनी जातियाँ भारत में उपलब्ध हैं—लगभग ३५०—उनमें से अधिकांश सर्प विषहीन होते हैं। यों केवल उनकी भयानक आकृति को देखकर हम भले ही डर जायं। विषैले सर्पों में जो सबसे प्रमुख हैं वे गेंहुँअन, करैत तथा वाइपर हैं। यद्यपि विषैले सर्पों की बहुत कम जातियाँ भारत में उपलब्ध हैं; फिर भी यहाँ प्रतिवर्ष हज़ारों की संख्या में मनुष्य साँप के काटने से मरते हैं। इसका मुख्य

कारण भारतीय अंधविश्वास हैं। झाड़-फूँक पर विश्वास करने में ही लोग लगे रहते हैं और समय पर उचित चिकित्सा नहीं हो पाती।

सर्प की बनावट कुछ विचित्र किस्म की होती है। उसका शरीर लम्बा, बेलन के आकार का होता है। सर्प के पैर नहीं होते। उसका सम्पूर्ण शरीर शल्कों से ढका होता है। भिन्न-भिन्न सर्पों में भिन्न-भिन्न आकार तथा रंग के शल्क होते हैं। इनकी जाति इन्हीं शल्कों एवं रंगों के आधार पर ज्ञात की जाती है। सर्प का सिर चपटा-सा रहता है और इसकी पूँछ लम्बी होती है।

सर्प के सिर पर ही नासिका-रन्ध्र रहते हैं। उसके नेत्रों पर पलक नहीं होते, फलस्वरूप सर्प के नेत्र सदा खुले रहते हैं। इसी कारण सर्प अधिक दूर तक देख सकने में भी असमर्थ रहता है। सर्प के सम्बन्ध में एक बड़ी ही अजीब बात यह है कि उसके कान नहीं होते। वह अपने आन्तरिक कर्णों से ही ध्वनि-तरंगों को ग्रहण करता है। सर्प के आसपास लकड़ी या अन्य किसी भी वस्तु से आघात करने पर वह कम्पन के शब्द को सुनकर हट जाता है। इस प्रकार वह शरीर के अन्य अंगों से कानों का अभाव पूरा कर लेता है।

सर्प की जीभ के बीच दो भाग रहते हैं। यह जीभ बहुत पतली, लम्बी और चिकनी होती है जो शीघ्रता से बाहर-भीतर

होती रहती है। सर्प की जीभ की अपनी विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता तो यह है कि अन्य कीड़े मुँह खोकर ही अपनी जीभ बाहर निकाल सकते हैं किन्तु साँप बिना मुँह खोले ही अपनी जीभ बाहर निकाल लेता है। दूसरी विशेषता यह है कि इसकी जीभ स्पर्शग्राही होने के साथ ही साथ ध्वनि-कम्पनों का भी अनुभव कर लेती है।

सर्प की मांसपेशियाँ बड़ी बलिष्ठ होती हैं। आपने देखा होगा कि कुछ साँप अपनी पूँछ के बल पर पूरे खड़े हो जाते हैं। इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि इसकी मांस-पेशियाँ कितनी बलिष्ठ होती हैं। इन्हीं मांसपेशियों के बलिष्ठ होने के फलस्वरूप साँप आसानी के साथ दौड़ सकता है, पेड़ पर चढ़ सकता है और पानी में भी तैर सकता है। नदी की धार को चीरकर तैरना साँप के लिए कोई कठिन बात नहीं है। अजगर तो इतना बलिष्ठ होता है कि हिरन, चीता और सूअर आदि की हड्डी-पसली तक अपनी कुण्डलियों में जकड़कर तोड़ सकता है।

साँप की लम्बाई कम से कम ६ इंच और अधिक से अधिक चालीस फुट रहती है। विभिन्न जातियों के सर्पों में लम्बाई, शक्ति और 'विषैलेपन में विभिन्नता होती है। सबसे छोटे किस्म का सर्प टाइफ्लाप्स होता है जो सिर्फ ६ इंच लम्बा होता

है और सबसे बड़ा सर्प अजगर होता है जो चालीस फुट तक लम्बा होता है।

सर्प स्वयं अपना बिल नहीं बना पाते। इसका कारण उनके पैरों का अभाव है। इसलिए वे सदा दूसरों के द्वारा बनाये हुए बिलों में रहते हैं। आमतौर पर ये चूहों के बिलों में ही रहते हैं जहाँ उन्हें उनका भोज्य पदार्थ भी मिल जाता है और रहने का स्थान भी। कुछ सर्प वृक्षों पर, कुछ खण्डहरों में, कुछ घनी झाड़ियों में तथा कुछ गीली मिट्टी में भी रहते हैं।

ऊपर बताया जा चुका है कि साँप के शरीर में टाँगें नहीं होतीं। फिर प्रश्न उठ सकता है कि ये सर्प इतनी शीघ्रता से कैसे चल लेते हैं। सर्प चलता नहीं बल्कि रेंगता है। अपनी पसलियों को हिला-डुलाकर यह आगे-पीछे रेंगता है। इसकी हड्डियों की रचना कुछ इस प्रकार की होती है कि सर्प बड़ी सुगमता से अपने शरीर को जिधर चाहे उधर मोड़ सकता है। सर्प की प्रत्येक अस्थि रीढ़ की हड्डी से जुड़ी रहती है। यही कारण है कि सर्प अपनी पसलियों से भूमि को पीछे छोड़ता हुआ आगे बढ़ता है।

सर्प जिन जीवों को खाता है उन्हें वह पूरा ही निगल जाता है, टुकड़े-टुकड़े कर नहीं खाता। मेंढक, चूहे, चिड़ियाँ आदि इसके प्रमुख भोज्य पदार्थ हैं। कुछ सर्प तो अपनी जाति

के छोटे सर्पों को ही खा जाते हैं। अजगर तो हिरन को निगलकर उसके खुर, सींग आदि को भी हजम कर लेने की सामर्थ्य रखता है। सर्प के मुख की आकृति कुछ इस प्रकार की होती है कि वह अपनी मुखगुहा से भी बड़े-बड़े शिकार को निगल जाता है।

सर्पों के मुख में दाँत छः पंक्तियों में होते हैं। निचले जबड़े, ऊपरी जबड़े और तालू में दो-दो पंक्तियाँ होती हैं। दाँत इनके सुई के समान नुकीले और भीतर की ओर मुड़े हुए होते हैं। यही कारण है कि एक बार साँप के फंदे में जो जीव फँस जाता है वह सुगमता से निकलता नहीं। जो शिकार मुँह में आ गया वह तो भीतर ही जाएगा। विषैले सर्पों में विष के दाँत अलग रहते हैं जिनका सम्बन्ध विष की थैलियों से होता है। इन्हीं दाँतों से विषैला साँप मनुष्य के शरीर में विष का प्रवेश कराता है।

कंठ में ध्वनि-उत्पादक रज्जु के अभाव में साँप मुँह से किसी प्रकार का शब्द नहीं कर सकता, केवल फुफकार ही मार सकता है। साँप शीत से बहुत घबराता है और शीतकाल में बिल से बाहर न निकलने के कारण यह भूखा ही पड़ा रहता है। भूख सहन करने की भी इसकी क्षमता अजीब है। महीनों तक बिना भोजन किये ही यह रह सकता है। शान्त और अँधेरे स्थान को साँप बहुत पसन्द करता है।

सर्पों में नर और मादा भी अन्य जीव-जन्तुओं की तरह अलग-अलग होते हैं। केवल वाइपर सर्प को छोड़कर शेष सभी सर्प अण्डे देते हैं। इन अण्डों की संख्या सर्प की जाति के अनुसार ७ से १०० तक होती है। कुछ अण्डों से ४ दिन में शिशु निकल आते हैं और कुछ में से ३ माह में निकलते हैं। विषैले सर्पों के शिशु जन्म से ही विषैले होते हैं। वाइपर सर्प के बच्चे का जन्म मादा वाइपर के पेट में से ही होता है।

सर्प का आकार पहले और दूसरे वर्ष द्रुत गति से बढ़ता है, फिर क्रमशः उसके विकास में कमी आ जाती है। इसी कारण सर्पों को वर्ष में कई बार केंचुल बदलनी पड़ती है। केंचुल बदलने का सर्प का तरीका बड़ा निराला है। अपने सिर को पत्थर या पेड़ की शाखा से रगड़कर वह उसमें छेद कर लेता है और उस छेद के द्वारा बाहर निकलता है।

अजगर सर्पों में सबसे विशालकाय होते हैं, किन्तु वे विष-हीन होते हैं। वृक्षों से लटककर वे अपने शिकार को पहले पकड़ लेते हैं। बाद में अपनी मांसपेशियों में कसकर उसका दम निकाल देते हैं। इसके बाद ही वे उसे निगलते हैं। अजगर भी अण्डे देते हैं, जिन्हें मादा अजगर २½-३ मास तक कुण्डली मारकर सेती है।

प्रश्न

१. क्या समस्त सर्पों को हम विषधर कह सकते हैं ?

२. सर्प केंचुल क्यों बदलता है ?

३. विषैले सर्प और विषहीन सर्पों में किस प्रकार अन्तर मालूम हो सकता है ?

४. सर्प की कितनी किस्में भारत में पाई जाती हैं ?

: १० :

विचित्र मछलियाँ

समुद्र अनेक विचित्र जीव-जन्तुओं का आगार है। अगणित जलचर इसमें निवास करते हैं। एक छोटी मछली से लेकर व्हेल मछली तक सैकड़ों प्रकार के जीव-जन्तु इसमें पाये जाते हैं। प्रकृति का रहस्य इस बात में है कि जिस प्रकार दो देशों के निवासियों में शारीरिक रचना, भोजन आदि बातों में विभेद होता है, ठीक उसी प्रकार दो भिन्न-भिन्न समुद्रों में रहनेवाले जन्तुओं में भी विभेद होता है। जो जीव-जन्तु हिन्द महासागर में मिलते हैं, वे ही जीव-जन्तु अटलांटिक महासागर में प्राप्त हों, यह कोई आवश्यक बात नहीं। उनमें भी बहुत अन्तर होता है। सैकड़ों प्रकार की मछलियाँ, मगर, घड़ियाल आदि विभिन्न

समुद्रों में प्राप्त होते हैं। अपने आसपास के तालाब, नदियों आदि में ही इन मछलियों की अनेक जातियाँ प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु समुद्र में कुछ बड़ी अनोखी किस्म की मछलियाँ प्राप्त होती हैं, जो हमें आश्चर्य में डाल देती हैं।

कुछ मछलियों के शरीर से बिजली उत्पन्न की जाती है। ईल नामक मछली भी बिजली उत्पन्न करनेवाली मछलियों में से एक है। इस मछली का आकार साँप के समान होता है। इसकी लम्बाई भी ६ फुट से लेकर १० फुट तक होती है। इसके शरीर के अगले भाग में पौजिटिव पोल और पिछले भाग में नैगेटिव पोल होता है। इसके शरीर में तीन बैटरियाँ होती हैं जिनसे बिजली पैदा की जा सकती है। ईल अपने नैगेटिव और पौजिटिव पोल को अपने शिकार के शरीर से स्पर्श कराके उसका प्राणान्त करती है। जैसे ही दोनों पोल शिकार के शरीर से स्पर्श करते हैं कि शिकार को तेज धक्का लगता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। अन्य मछलियाँ केवल आगे को तैरती हैं, जबकि यह मछली पीछे भी उतनी ही तेजी से दौड़ सकती है जितनी आगे की ओर।

आप जानते हैं कि अनेक रोगों के उपचार के लिए बिजली का प्रयोग किया जाता है। प्राचीनकाल में बिजली तो थी ही नहीं, अतः ऐसे जन्तुओं को उपयोग में लाया जाता था जिनके शरीर से विद्युत् उत्पन्न होती है। उदाहरणस्वरूप यदि कोई

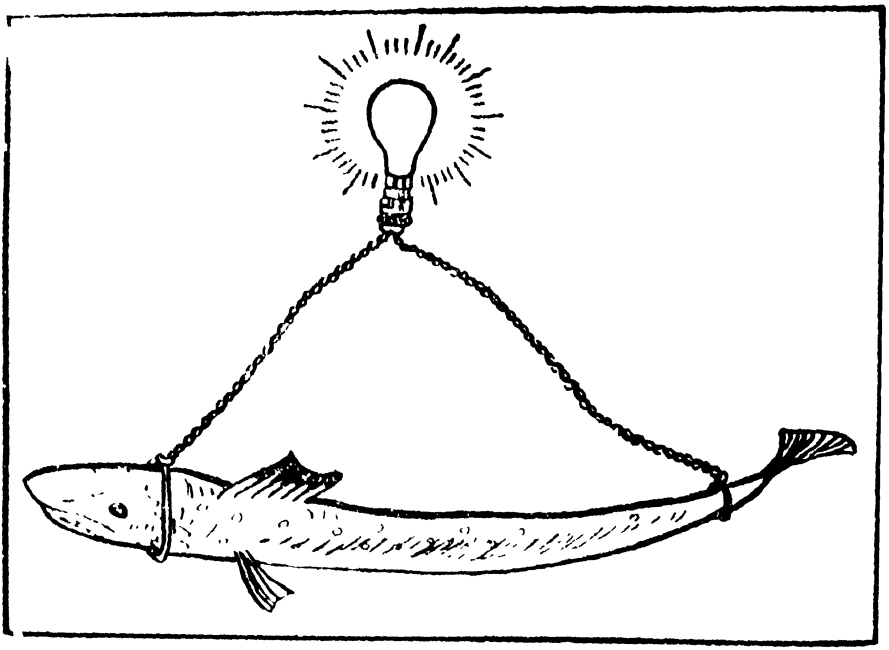

व्यक्ति गठिया या सिरदर्द से पीड़ित होता था तो उसे नंगे पैरों ऐसी मछली के शरीर पर खड़ा होना पड़ता था जो शरीर को सुन्न बना देती थी। विद्युत् शक्ति के द्वारा ही मछली आदमी के शरीर को सुन्न बना पाती थी, अन्यथा और किसी जीव-जन्तु के ऊपर खड़े होने से मनुष्य का शरीर कभी भी सुन्न नहीं होता। दूसरे हर मछली में यह विशेषता नहीं होती, विशेष प्रकार की मछलियों में ही यह गुण होता है। कैट फिश इसी प्रकार की एक मछली है, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यदि उसे कोई व्यक्ति हाथ से स्पर्श करे तो उसे जोर का

धक्का लगता है । यह धक्का कभी-कभी इतने वेग का होता है कि आदमी मूर्छित हो जाय । मछली का जैसा आकार होगा, धक्के की शक्ति भी वैसी ही होगी । अरब के मछुए कैट फिश की इस विशेषता को जानते थे, इसी कारण वे इसे हाथ से पकड़ने में हिचकिचाते थे ।

उष्ण सागर में तारपीडो या इलैक्ट्रिक रे फिश जाति की एक मछली पाई जाती है, जिसमें बिजली उत्पन्न करने की बहुत अधिक शक्ति होती है । तारपीडो के शरीर में इतनी विद्युत् होती है कि उसके चारों ओर का वातावरण उससे प्रभावित हो जाता है । ऐसी मछलियाँ अपनी इस प्राकृतिक देन के कारण अपना भोजन प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई महसूस नहीं करतीं । शत्रु के शरीर को सुन्न बनाकर यह उसके पास आसानी से पहुँच जाती हैं और अपना शिकार करती हैं । इस मछली में विद्युत् पैदा करनेवाले अंग सिर और पैक्टोरल फिन्स के बीच में होते हैं । इन अंगों की बनावट ठीक एक सैल के समान होती है जिसमें दो प्लेटें धनात्मक और ऋणात्मक होती हैं । सैल में प्रयोग होनेवाले द्रव की जगह शहद के समान एक गाढ़ा द्रव होता है । इन अंगों की रचना स्टोरेज बैटरी के समान होती है जो कई सैलों से मिलकर बनती है । अतः इसका रूप अनेक षट्कोण को मिलाकर बनाये गये रूप के समान होता है । ये षट्कोण एक-दूसरे से पृथक् रहते हैं । इलैक्ट्रिक प्लेट के एक ओर नाड़ियों का गुच्छा होता है जो

मस्तिष्क से सम्बन्धित रहता है। तारपीडो के शरीर से लगभग ३० वोल्ट तक विद्युत् प्राप्त की जा सकती है। यह इससे अधिक वोल्ट विद्युत् तैयार कर सकती है।

ईल और तारपीडो के विद्युतीय अंग परस्पर मिलते हैं। इलैक्ट्रिक ईल की पूँछ बड़ी होने के कारण इसकी पूँछ के दोनों ओर बिजली पैदा करनेवाले अंग होते हैं। ईल की इलैक्ट्रिक प्लेटें ऊपर-नीचे न लगी होकर सीधी एक लाइन में लगी होती हैं। इनसे सम्बन्धित नाड़ियाँ सुषुम्ना को जाती हैं। इलैक्ट्रिक कैट फिश के विद्युतीय अंग त्वचा और तन्तुओं के बीच के स्थान में सारे धड़ को घेरे रहते हैं। यहीं इलैक्ट्रिक प्लेटें भी होती हैं।

स्केट और रे मछलियों में विद्युतीय अंग अर्द्धविकसित ही रहते हैं। स्टार गेजर मछली में विद्युतीय अंग नेत्रों के दोनों ओर अण्डाकार धब्बों की तरह होते हैं। इलैक्ट्रिक प्लेटों की कई तहों से बने होने के कारण इनमें धक्का मारने की भारी शक्ति होती है।

मछलियों में विद्युतीय अंगों का विकास तथा बिजली पैदा होने का रहस्य अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। बिजली पैदा करने की विधि के बारे में भी लोगों की भिन्न-भिन्न विचार-धारा है। मछली अपनी इच्छानुसार मात्रा में बिजली पैदा करती है। बार-बार बिजली पैदा करने से उसे थकावट आती है। अतः आवश्यक विश्राम लेकर ही वह फिर बिजली पैदा करती है।

कुछ जीव-जन्तुओं की बनावट इस प्रकार को होती है कि वे जल और थल दोनों में ही एक प्रकार से रह सकते हैं। जल में रहते हुए वे जल-श्वसनिकाओं से साँस लेते हैं और बाहर फेफड़ों की सहायता से। मगर, कछुआ, मेंढक, केंकड़ा इसी प्रकार के जन्तु हैं। कुछ मछलियाँ भी इसी प्रकार को होती हैं। अफ्रीका की मड-फिश इसी प्रकार की एक मछली है। पानी में रहते समय यह गिल्स—जल। श्वसनिकाओं—से सांस लेती है और जब नदियों का पानी सूख जाता है तो यह मछली कीचड़ में घुसकर वहीं बैठी-बैठी फेफड़ों की सहायता से श्वास लेती है। नदियों में फिर पानी आ जाने पर यह फिर गिल्स की सहायता से श्वास लेती है।

समस्त जीवधारी भोजन से शक्ति प्राप्त करते हैं। इस शक्ति को निकालना प्रत्येक जीव के लिए अत्यन्त आवश्यक है। कुछ जीव खेल-कूदकर, चल-फिरकर इस शक्ति को क्षय करते हैं, जबकि कुछ ऐसे भी जन्तु हैं जो प्रकाश के रूप में अपनी इस शक्ति का क्षय करते हैं। जुगनू को प्रायः हमने बरसात में इधर-उधर प्रकाश बिखेरते हुए देखा है। कुछ मछलियाँ भी इसी प्रकार की होती हैं। एंग्लर फिश इसी प्रकार की एक मछली है। यह हिन्द महासागर में पाई जाती है। यह मछली देखने में बहुत भयंकर लगती है। यह प्रकाश उत्पन्न करती है और अपनी इस विशेषता के कारण वह बड़े सहज रूप से अपना शिकार प्राप्त कर लेती है।

एंग्लर फिश की उपजाति की एक मछली लोफियस होती है जो अटलाण्टिक महासागर में पाई जाती है। यह प्रकाश उत्पन्न करती है। इसके शरीर के ऊपर अनेक प्रकाशवान टेण्टेकिल्स होते हैं, जो कीड़ों-मकोड़ों के समान दिखाई पड़ते हैं। इन प्रकाशवान टेण्टेकिल्स को देखकर जब दूसरी मछलियाँ इसके आसपास आती हैं तो लोफियस उन्हें अपना शिकार बना लेती है।

कुछ मछलियों के शरीर के विभिन्न भागों से लाल, नीला, नारंगी प्रकाश निकलता है। इन मछलियों की शारीरिक रचना भी विचित्र प्रकार की ही होती है।

जिस प्रकार लोफियस मछली अपने शारीरिक प्रकाश से लाभ उठाकर अपने से छोटी मछलियों का शिकार करती है, इसी प्रकार कुछ अन्य मछलियाँ ऐसी भी हैं जिनका शिकार करने का ढंग भी बड़ा ही अनोखा है। आर्चर फिश—जिसे तीरंदाज मछली भी कहते हैं—का नाम इसको अपनी विशेषता के कारण पड़ा। इस मछली की लम्बाई लगभग ५-६ इंच होती है। इसके शिकार करने का ढंग बड़ा विचित्र है। अपने मुख को फूँक नली के समान बनाकर यह मछली मुँह में भरी पानी की बूँदों को अपने शिकार के ऊपर फेंकती है। यह पानी की बूँदें बड़ी तीव्र गति से जाकर शिकार का प्राणान्त कर देती हैं। इस प्रकार अपने अनोखे निशाने के कारण ही इस मछली का नाम तीरंदाज मछली पड़ा।

जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, कुछ मछलियों में गिल्स ग्रौर फेफड़े दोनों ही होते हैं। इसलिए वे जल ग्रौर थल दोनों ही में जीवित रह सकती हैं। पैरिग्रौफथैलमस—जिसे मडस्किपर मछली भी कहते हैं—में भी यह विशेषता होती है। यह मछली

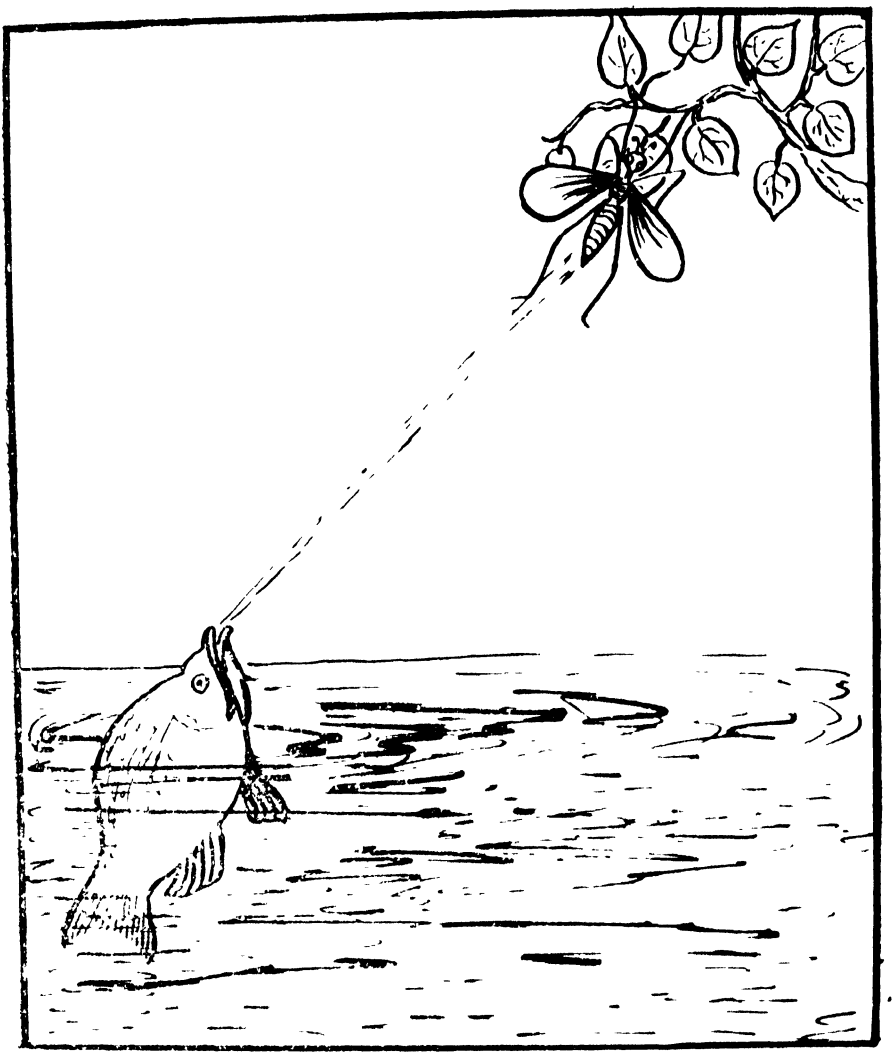

अपनी एक अन्य विशेषता के लिए भी प्रसिद्ध है। प्रकृति का प्रत्येक जीव कुछ परिवर्तन चाहता है। एक ही प्रकार का जीवन-यापन करते हुए उसे ऊब हो जाती है। मडस्किपर भी जब पानी में तैरते हुए ऊब जाती है, तो अपने मन-बहलाव के लिए पानी की सतह से उछाल मारकर किसी चट्टान पर बैठ जाती है। अपनी उछाल और चट्टान पर बैठने में इसके मजबूत पैक्टोरल फिन्स इसकी बड़ी सहायता करते हैं। चट्टान पर पहुँचकर वहाँ यह मछली कुछ समय तक विश्राम और मनो-रंजन करती है। इसके पश्चात् फिर पानी में डुबकी लगा जाती है।

पक्षियों को घोंसला बनाते हुए आपने देखा या सुना होगा। लेकिन आपको यह पढ़कर अत्यन्त आश्चर्य होगा कि कुछ मछलियाँ भी घोंसले बनाती हैं। नर स्टिकिलबैक किसी जलीय पौधे के सहारे तिनकों आदि का एक घोंसला बनाता है। इन तिनकों को परस्पर बाँधने के लिए यह नर मछली अपने शरीर से ही धागा उत्पन्न करता है। अपने आकर्षक लाल रंग द्वारा यह मादा मछली को रिझा ले आता है जो उस घोंसले में अण्डे देती है। इसी प्रकार अन्य बहुत-सी मछलियों के अण्डों से इसका घोंसला भर जाता है। इन अण्डों को नर स्टिकिलबैक बड़ी सावधानी के साथ सेता है। बड़ी-बड़ी मछलियों का सामना भी वह इस बीच करता है। इस प्रकार नर स्टिकिलबैक सन्तान के प्रति अपना ममत्व प्रदर्शित करता है।

जहाँ नर स्टिकिलबैक पक्षियों के समान घोंसला बनाता है, वहीं समुद्र में उड़नेवाली मछलियों की भी कमी नहीं हैं। इस प्रकार की ६०-७० मछलियाँ उष्ण कटिबन्ध में पाई जाती हैं। हवा में उड़ने के लिए दोनों पैक्टोरल फिन्स इसके शरीर को साधते हैं और इसकी चौड़ी और चपटी पूँछ हवा में इसे आगे बढ़ाती है।

सैमलेट नामक एक अन्य मछली समुद्री पेड़-पौधों पर पानी में से उछाल मारकर बैठ जाती है और वहीं अण्डे देती है। वह बराबर इन अण्डों पर पानी फेंका करती है। यह क्रम तब तक चलता है जब तक कि अण्डों में से बच्चे नहीं निकल आते।

इस प्रकार अपने अद्‌भुत कारनामों के कारण ये मछलियाँ मनुष्य की बुद्धि को भी आश्चर्य में डाल देती हैं। मनुष्य सोच रहा है कि बिजली पैदा करनेवाली मछलियों का पूर्ण उपयोग हो सके तो मानवता का बड़ा उपकार हो सकेगा।

प्रश्न

१. बिजली उत्पन्न करनेवाली मछली कौन-सी है? वह किस प्रकार अपने शिकार को पकड़ती है? क्या आपने और किसी मछली के सम्बन्ध में भी पढ़ा है जो बिजली पैदा करती हो?

२. गिल्स और फेफड़ों का समान रूप से उपयोग करनेवाली मछलियाँ कौन-कौन-सी हैं?

३. मछलियाँ प्रकाश क्यों देती हैं ? प्रकाश देनेवाली मछलियों
कौन मछली प्रसिद्ध है ?

४. कारण बताओ—

(अ) मडस्किपर चट्टान पर क्यों बैठती है ?

(ब) नर स्टिकिलबैक घोंसले क्यों बनाता है ?

(स) कैट फिश को हाथ में लेने से मछुए क्यों हिचकते हैं ?

५. संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—

(अ) सैमलेट (ब) आर्चर फिश (स) ईल (द) तारपीडो

(इ) कैट फिश ।

: ११ :

सहयोग का भाव
इन जीव-जन्तुओं से सीखिये

मनुष्य अपने-आपको ईश्वर की सर्वश्रेष्ठं कृति मानता है। अन्य जीव-जन्तुओं को वह अपने से बहुत हेय समझता है। लेकिन उसको यह नहीं मालूम कि अभी बहुत-से सद्‌गुण उसे इन्हीं जीव-जन्तुओं से सीखने हैं। इन जीव-जन्तुओं में पारस्परिक सहयोग की तथा सामूहिक श्रम करने की जैसी भावना विद्यमान है, उसे देखकर यह कहना ही पड़ता है कि मनुष्य को यह सद्‌गुण अभी मानवेतर प्राणियों से सीखने हैं।

सहयोग की भावना ही प्राणियों को जीवित रखती है। जो जीव पारस्परिक सहयोग बनाये हुए हैं उनकी संख्या उन जीव-

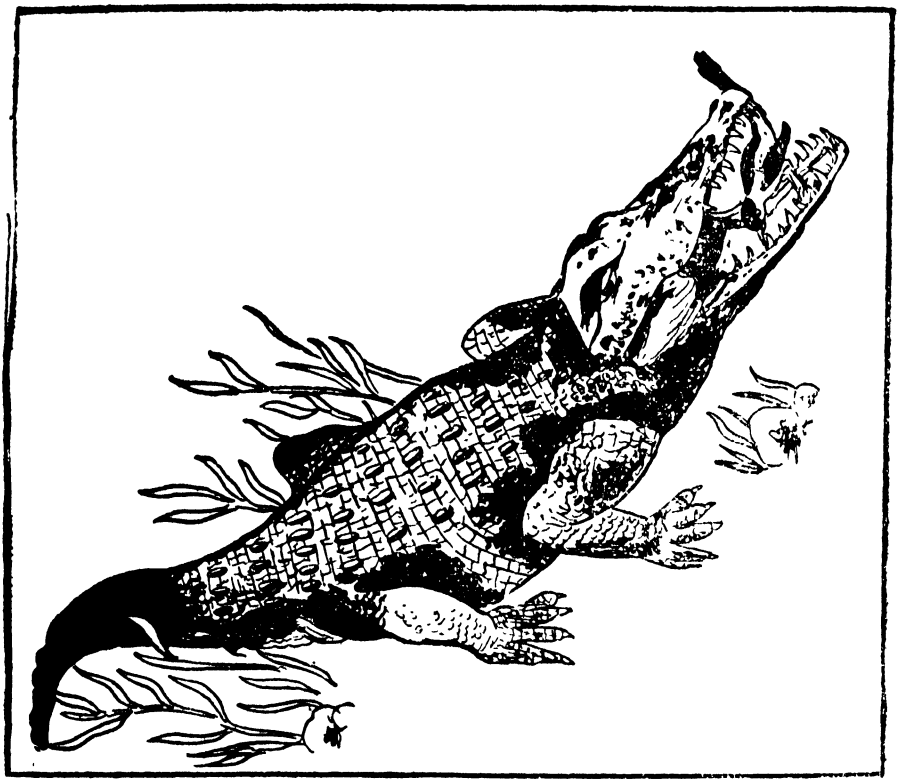

धारियों से कई गुनी है जो परस्पर लड़ते-भिड़ते हैं। यह सत्य है कि जीवधारियों की समस्त जातियों में यह भावना नहीं है। लेकिन जिन जातियों में है, उनसे हमें यह सद्‌गुण सीखने में हिचक नहीं होनी चाहिए, क्योंकि—

उत्तम विद्या लीजिए, जदपि नीच पै होय।
परौ अपावन ठौर में, कंचन तजै न कोय॥

आइये अब हम देखें कि हमें किन-किन प्राणियों से यह शिक्षा मिल सकेगी।

समुद्र में एक विशेष प्रकार की मादा मछली होती है जिसका आकार फुटबाल जैसा होता है और पूँछ लगभग डेढ़ गज लम्बा होता है, लेकिन इसी जाति की नर मछली का आकार मादा मछली की तुलना में वैसा ही होगा जैसे हाथी और बकरी। लेकिन दोनों में ही प्रेम और सहयोग का भाव बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। मादा मछली नर को सदा अपने पेट के नीचे चिपकाए चलती है, जिससे नर किसी अन्य बड़ी मछली का शिकार न हो जाए। आवश्यकता पड़ने पर मादा अपने पतिदेव की रक्षा के लिए दूसरी मछलियों से संघर्ष भी करती है। छोटे-बड़े का यहाँ कोई भेद-भाव नहीं।

शार्क मछली का नाम आप लोगों ने सुना होगा। यह विशालकाय मछली ठीक अपनी नाक के नीचे एक अन्य मछली को चिपकाए रहती है जो उसके मार्गदर्शक का काम करती है। इस मछली की सहायता से ही शार्क अबाध गति से इधर-उधर घूमती है, कभी-कभी स्टीमर के नीचे भी चली जाती है। किन्तु यदि यह मछली किसी प्रकार अलग हो जाती है तो शार्क की दशा वैसी ही हो जाती है जैसी कि लाठी के बिना एक अंधे आदमी की। इसीलिए अफ्रीका-निवासी जब कभी शार्क मछली का शिकार करते हैं तो पहले उसके पायलट को

ही मार डालते हैं, फिर शार्क का शिकार करना उनके लिए अत्यन्त आसान हो जाता है।

अफ्रीका के जंगलों में विभिन्न जातियों के जीवों में परस्पर सहयोग की भावना बहुत अधिक देखने को मिलेगी। हाथी यदि घायल अवस्था में जंगल में छाड़ दिया जाये तो उसके दल के अन्य हाथी उसे अपने शरीर की सहायता देकर ठीक उसी प्रकार सुरक्षित स्थान पर उठाकर ले जाएँगे जिस प्रकार हम लोग किसी बीमार या घायल आदमी को उठाकर ले जाते हैं।

चिम्पांजियों में भी इसी प्रकार का सहयोग होता है। कोई संकट आया हुआ देखकर दल का नेता अपने समस्त दल को पहले संकट से निकालता है और बाद में स्वयं भी निकलता है। दल का नेता इसी प्रकार का होना चाहिए।

कौओं में जो पारस्परिक सहयोग होता है, उसे तो सर्व-साधारण जानते ही हैं। खाने को कुछ दिखाई पड़ जाए, कौआ अकेला कभी नहीं खाएगा। काँव-काँव करके पहले इर्द-गिर्द के अपने भाइयों को इकट्ठा कर लेगा, फिर सामूहिक भोज होगा। इसी प्रकार विपत्ति आई हुई देखकर एक कौए की काँव-काँव को सुनकर सैकड़ों कौए इकट्ठे हो जाते हैं। खाने के सम्बन्ध में गीधों में भी सहयोग की यही प्रवृत्ति देखी गई है।

यों तो प्रायः सभी नर और मादा पक्षी मिलकर अपने-अपने घोंसले बनाते हैं, किन्तु कुछ पक्षी ऐसे भी होते हैं जो

सामूहिक रूप से घोंसले का निर्माण करते हैं। एक ही घोंसले में अनेक परिवार रहते हैं। बीवर पक्षी इन्हीं पक्षियों में से एक है। बीवर पक्षियों का एक दल वृक्ष के ऊपर तिनकों एवं कचरों को जोड़कर एक ऐसा घोंसला बनाता है जो छतरी के आकार का होता है। इस घोंसले के नीचे बीवर पक्षियों की टोली सुखपूर्वक विश्राम करती है।

दल में सम्मिलित रूप से काम करनेवाले प्राणियों में ऊदबिलाव का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे अपने पैने दाँतों से किसी भी वृक्ष को खोखला बनाकर उसमें विभिन्न कक्ष जैसे मालगोदाम, उठने-बैठने का कक्ष आदि बना लेते हैं। इन ऊदबिलावों में भी अलग-अलग प्रकार के कार्यकर्ता रहते हैं।

चींटी का श्रम और उसकी लगनशीलता तो संसार में प्रसिद्ध है ही। वस्तुतः सहयोग की जैसी भावना इन नन्हे प्राणियों में देखी गई है, वैसी अन्य किसी प्राणी में नहीं। अपने शरीर के भार के अनुपात में जितना भार ये छोटी चींटियाँ लादकर ले जाती हैं, उतना मनुष्य लेकर हिल भी नहीं सकता। किसी नदी को पार करने में जब ये असमर्थ हो जाती हैं तो स्वयं एक-दूसरी से जुड़कर एक पुल बना देती हैं जिस पर से अन्य चींटियाँ आसानी से पार उतर जाती हैं। पानी में गिरी हुई किसी भी चींटी को ये बचाकर ले आती हैं और उसका उपचार करके स्वस्थ भी बना लेती हैं।

चींटियों का राजकीय विधान भी आश्चर्य में डाल देता है। इन चींटियों में राजा, रानी, सेवक, नर्स, प्रजा सभी रहते हैं और सभी अपना-अपना उत्तरदायित्व निबाहते हैं। ये चींटियाँ तितली के अण्डों तथा वीटल नामक कीड़ों से सेवा भी कराती हैं। तितली जब अण्डे से अपने रूप में आती है उस समय तक उसके शरीर से निकलनेवाले रस को ये चींटियाँ बड़े स्वाद से खाती हैं। रानी की आज्ञा सर्वोपरि होती है और उसके आदेश का पालन हर चींटी करती है।

प्राणियों में केवल एक ही जाति के जीवों में सहयोग की भावना हो ऐसी बात नहीं है। अलग-अलग जातियों के जीव भी परस्पर सहयोग से रहते हैं और सम्मिलित रूप से शिकार करते हैं। केकड़े का ही उदाहरण ले लीजिए, समुद्र के तट पर किसी शिलाखण्ड के सहारे किसी शंख के निचले हिस्से में केकड़ा अपने रहने का प्रबन्ध करता है। उसी शंख के दूसरे हिस्से में एक अन्य समुद्री कोड़ा रहता है और तीसरा प्राणी है ऐक्टोनिया नाम का एक समुद्री जीव जिसका आकार पौधा लगे हुए गमले के समान होता है। इस प्रकार एक प्राणी का आवास बनाकर तीन-तीन जीव उसपर रहते हैं। अब देखिए, ये प्राणी किस प्रकार सम्मिलित रूप से अपना आहार जुटाते हैं। केकड़ा इस समस्त बोझ को लेकर चलता है। मार्ग में जो भी छोटे-मोटे जीव इस गमलेनुमा जीव के पास आते-जाते हैं

उन सबको अपना आहार बनाकर यह तीनों अपना जीवन-यापन करते हैं।

एक और भी आश्चर्यजनक बात तो यह है कि कुछ प्राणी ऐसे भी होते हैं जो जानबूझकर अपने शत्रुओं को सहयोग प्रदान करते हैं। ऐसा करने में उनका स्वयं का जीवन भी खतरे में पड़ जाता है। चेन्फिस नामक पक्षी कोयल के अण्डे-बच्चों का पालन बड़ी तत्परता के साथ करता है। किन्तु ये बच्चे इतने कृतघ्न होते हैं कि बड़े होने पर अपने पालनकर्त्ता के अण्डों को उसके घोंसले से बाहर फेंक देते हैं और उसमें स्वयं आराम से रहते हैं। चेन्फिस इन शत्रुओं की कृतघ्नता को जानकर भी न मालूम क्यों इतनी उदारता दिखलाता है।

एक बात तो नित्य प्रति सभी लोग देखते होंगे। गाय, बैल आदि पशुओं और पक्षियों में भी परस्पर सहयोग की भावना मौजूद रहती है। कौए आदि पक्षी इनकी पीठ व गर्दन पर बैठकर इनके शरीर का रक्त-शोषण करने वाली किलौरियों को चुन-चुनकर खाते हैं और यह पशु बड़े प्रेम से अपनी सेवा कराते हैं। कछ लोगों को यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य होगा कि मगर भी इसी प्रकार अपने दाँतों के बीच फँसे हुए मांस कणों को कुछ पक्षियों से निकलवाता है। जब तक पक्षी का कार्य समाप्त नहीं हो जाता तब तक वह बराबर मुँह फाड़े ही पड़ा रहता है।

प्रश्न

१. सहयोग की भावना पशु पक्षियों में भी होती है, उदाहरण देकर सिद्ध करो।

२. मनुष्य को कौन-कौन से पशु-पक्षियों से सहयोग का सबक सीखना चाहिए ? और क्यों ?

३. चींटी एक दूसरे की मदद किस प्रकार करती है ? अपने शब्दों में लिखो।

४. "मगर जैसा माँसाहारी जीव भी कुछ पक्षिओं को अपने मुँह में भोजन प्राप्त करने का स्थान देता है" क्या यह सत्य है ?

५. अफ्रीका के जँगलों में कुछ सहयोगी पशुओं के सम्बन्ध में आप जो कुछ जानते हो उसे लिखिए।

: १२ :

माइकेल फैराडे

बड़ आदमी की सन्तान यदि बड़ी निकलती है तो इसमें कोई असाधारण बात नहीं, स्तुत्य तो तब है कि अभावों में जीवन-यापन करता हुआ मनुष्य महानता प्राप्त करे। संसार के इतिहास में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जिन्होंने अत्यन्त अभाव-पूर्ण परिस्थितियों में जीवन-यापन करते हुए अपना नाम अमर किया है। विद्युत्-युग के अग्रदूत माइकेल फैराडे ऐसे ही महान् पुरुषों में से एक थे।

इस महान् वैज्ञानिक का जन्म इंग्लैण्ड के एक साधारण परिवार में २२ सितम्बर, १७९१ को हुआ था। फैराडे का पिता एक मामूली लुहार था जोकि अपने व्यवसाय से अपने परि-

वार का भरण-पोषण भी कठिनाई के साथ कर पाता था। अतएव फैराडे को बचपन में किसी अच्छे विद्यालय में अध्ययन करने का अवसर ही नहीं मिला। एक साधारण विद्यालय में उसने थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना सीखा और अंकगणित का कुछ अभ्यास किया था। पिता की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे उसे उच्च शिक्षा प्रदान करते। जब फैराडे १२-१३ वर्ष का हुआ तो पिता की इच्छानुसार उसे अपने परिवार के भरण-पोषण में सहायता देने के लिए कुछ धन्धा करना पड़ा। १३ वर्ष का बालक फैराडे क्या कार्य कर सकता था? फिर भी उसकी अवस्था के अनुसार एक पुस्तक तथा समाचारपत्र-विक्रेता रिबो के यहाँ उसे समाचारपत्र ले आने और बाँटने की नौकरी मिल गई।

फैराडे बचपन से ही बड़ा ईमानदार, लगनशील और अध्यवसायी व्यक्ति था। अपने काम को वह बड़ी मुस्तैदी के साथ करता था। उसके इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर उसके मालिक ने उसे अपनी ही दुकान में एक वर्ष तक के लिए जिल्दसाजी सीखने के लिए अपरेण्टिस के रूप में रखा। बालक फैराडे बड़ा जिज्ञासु भी था। जिल्दसाजी का काम सीखने के साथ ही साथ वह जिल्द बाधने के लिए आई हुई समस्त पुस्तकों को पढ़े बिना नहीं छोड़ता था। पढ़ने में उसका मन अधिक रमता था। दुकान-मालिक रिबो ने बालक फैराडे की इस प्रवृत्ति को भली प्रकार समझ लिया था। रिबो बड़ा दयालु प्रवृत्ति का आदमी था। उसके स्थान पर यदि और कोई दुकान-मालिक हुआ होता तो फैराडे को नौकरी से पृथक् कर देता। कारण जितनी देर में कोई व्यक्ति एक किताब पढ़कर समाप्त कर सकता है, उतनी देर में न मालूम कितनी पुस्तकों पर जिल्द चढ़ाई जा सकती थी। किन्तु न तो रिबो इतना संकुचित विचारों का ही था और न कठोर ही था। फैराडे की लगनशीलता, अध्ययन-प्रियता से प्रसन्न होकर उसने उसे पुस्तकें पढ़ने की तो छूट दे ही दी, अन्य अनेक सुविधाएँ भी प्रदान कीं।

यों तो फैराडे प्रायः हर प्रकार की पुस्तकें पढ़ा करता था, किन्तु विज्ञान की पुस्तकों में उसका मन बहुत लगता था। इन

पुस्तकों को पढ़ते समय वह नींद और भूख को भी परवाह नहीं करता था। विज्ञान की पुस्तकों में जो प्रयोग रहते थे, फैराडे स्वयं अपने घर पर ही उन प्रयोगों को पूरा किया करता था। उसकी अभिलाषा तो यही रहती थी कि अधिक से अधिक प्रयोग करे, किन्तु आर्थिक अभाव बाधा के रूप में आ खड़ा होता था। रिबो के यहाँ नौकरी करते समय ही फैराडे ने छोटे-मोटे कुछ यंत्र भी तैयार किए थे जिनमें से बिजली की मशीन, जो पहले काँच की शीशी की सहायता से बनाई गई थी और बाद में वास्तविक सिलिण्डर से, विशेष उल्लेखनीय है।

विज्ञान की ओर फैराडे की रुचि धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। वैज्ञानिक अनुसंधानों के विषय में जहाँ भी व्याख्यान होते थे, वह उन्हें जाकर सुनता था। अन्य वैज्ञानिकों के व्याख्यानों के अतिरिक्त उसने सर हम्फ्री डेवी के व्याख्यानों को भी सुना था। उसके अध्ययन की यह विशेषता थी कि जिन बातों को वह सुनता था उन्हें संक्षेप में लिखता भी जाता था और बाद में घर आकर उन पर मनन भी किया करता था। जिन प्रयोगों में अधिक खर्च नहीं उठाना पड़ता था, वे प्रयोग भी वह करता था।

फैराडे को अब जिल्दसाजी का धन्धा अरुचिकर प्रतीत होने लगा। उसे अब यद्यपि ३० शिलिंग प्रति सप्ताह मिलने लगे थे, किन्तु विज्ञान का अध्ययन और उसके प्रयोग करने के

लिए वह यह आवश्यक समझने लगा था कि किसी वैज्ञानिक धन्धे को ही अपनाए। सर डेवी के व्याख्यानों को सुनने के पश्चात् फैराडे उनकी ओर बहुत आकृष्ट हुआ था। उसने अपनी यह आकांक्षा सर डेवी के पास तक पत्र द्वारा पहुँचा ही दी। सर डेवी के जितने व्याख्यान उसने सुने थे, उन सबको भी संक्षेप में लिखकर उसने उनके पास पत्र के साथ भेज दिया।

सर डेवी फैराडे के पत्र एवं उसके साथ अपने व्याख्यानों के नोट्स देखकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने फैराडे की लगन और अध्यवसाय से प्रभावित होकर उसे रायल इन्स्टीट्यूशन की प्रयोगशाला में सहायक के पद पर नियुक्त कर दिया। यद्यपि इस नए कार्य में फैराडे को केवल २५ शिलिङ्ग प्रति सप्ताह ही मिलते थे, किन्तु वह अपने नए कार्य को पाकर बड़ा प्रसन्न था।

अध्यवसायी और लगनशील व्यक्ति तो निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होता ही है। फैराडे की लगन और अद्भुत बौद्धिक शक्ति ने सर डेवी को बड़ा प्रभावित किया। सन् १८१४ में जब सर डेवी ने यूरोप-भ्रमण किया, तो वे फैराडे को अपने निजी सचिव के रूप में अपने साथ ले गए। इस यात्रा में फैराडे ने अनेक वैज्ञानिकों से सम्पर्क स्थापित किया और उनके वैज्ञानिक आविष्कारों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। इस यात्रा से फैराडे को बहुत लाभ हुआ।

यात्रा से वापस लौटने पर वह फिर अपने उसी पद पर कार्य करने लगा। अभी तक उसे केवल साधारण कार्य ही मिलते थे, किन्तु इस यात्रा के पश्चात् उसे वास्तविक वैज्ञानिक कार्य दिए जाने लगे। अब तो फैराडे को अनुसंधान-कार्यों को देखने और करने का और भी अच्छा अवसर मिलने लगा। प्रारम्भ में सर डेवी के बताए गए मार्ग पर ही वह चला। फैराडे का सर्वप्रथम आविष्कार क्लोरीन गैस को उसी के दबाव से द्रव में परिवर्तित करना था। फैराडे के इस आविष्कार के आधार पर ही बाद में अनेक गैसों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सका। फेराडे का अनुसंधान-कार्य अब और भी तेजी से बढ़ने लगा। उसने कार्बन की दो नई क्लोराइडों का अनुसंधान किया। सन् १८२५ में उसने बेंजोल का आविष्कार किया। इन आविष्कारों से फैराडे का यश भी बढ़ने लगा। वह रायल सोसायटी का फैलो चुना गया और बाद में रायल इन्स्टीट्यूशन की प्रयोगशाला का डाइरेक्टर बना दिया गया। बाद में वह सर डेवी के स्थान पर रसायनशास्त्र का प्रोफेसर बना। यह सब उसके अध्यवसाय और लगन का परिणाम था।

फैराडे ने ओस्टेण्ड और वोलैस्टन की खोजों के आधार पर विद्युतीय चुम्बक के क्षेत्र में अपने प्रयोगों द्वारा डायनेमो का आविष्कार किया। बाद में इसी सम्बन्ध में उसने और भी बहुत-सी नई खोजें कीं। उसने मैग्नेटो-इलेक्ट्रिक मशीन बनाई।

इस मशीन को डायनेमो का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। इस आविष्कार ने ही टेलीफोन को जन्म दिया। बिजली-उत्पादन में फैराडे का यह आविष्कार बहुत सफल सिद्ध हुआ।

इन आविष्कारों से फैराडे की कीर्ति सर्वत्र फैल गई। १८३५-३६ में वह रायल इन्स्टीट्यूशन का सभापति बनाया गया तथा उसे कोमले पदक नामक पुरस्कार प्रदान किया गया। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उसे 'डाक्टर ऑफ सिविल लॉ' की उपाधि से सम्मानित किया। यही नहीं, उसे लन्दन विश्व-विद्यालय की सीनेट का सदस्य और ट्रिनिटी हाउस में वैज्ञा-निक सलाहकार भी नियुक्त किया गया। इसी बीच फैराडे ने अभिस्पन्दित किरणों के द्वारा यह सिद्ध किया कि विद्युत्-चुम्बकत्व और प्रकाश में पारस्परिक रहस्यमय सम्बन्ध है। वस्तुओं के चुम्बकीय आकर्षण और प्रतिकर्षण के सम्बन्ध में भी उसने अनेक प्रयोग किए। इन आविष्कारों पर रायल सोसा-इटी ने उसे रेनफोर्ड मेडल पुरस्कार में दिया।

फैराडे के उपर्युक्त आविष्कार विज्ञान जगत् में बड़े महत्त्व-पूर्ण हैं, जिनके लिए उसका नाम कभी नहीं भुलाया जा सकेगा। फैराडे के महत्त्व को स्वयं सर हम्फ्री डेवी ने स्वीकार किया था। उन्होंने कहा था कि मेरी सबसे बड़ी खोज फैराडे है। इतना महान् वैज्ञानिक होते हुए भी फैराडे को घमण्ड रंच-मात्र भी नहीं था। वह अपनी कीर्ति का भूखा नहीं था। उसे

'सर' की उपाधि दिए जाने के सम्बन्ध में जब प्रस्ताव रखा गया तो उसने अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा था कि मैं तो एक साधारण व्यक्ति ही बना रहना चाहता हूँ। २६ अगस्त, १८६७ को इस महान् वैज्ञानिक ने इस संसार से कूच किया।

प्रश्न

१. माइकेल फैराडे के बचपन के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ? लिखें।

२. माइकेल को एक विख्यात वैज्ञानिक बनने के पूर्व किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ?

३. माइकेल फैराडे ने कौन-कौन-से प्रसिद्ध नवीन आविष्कार किए ?

४. माइकेल फैराडे के जीवन से आपको क्या शिक्षा मिलती है ? स्पष्ट कीजिए।

: १३ :

भारत की वेधशालाएँ

भारत संसार में गणित एवं ज्योतिष के लिए प्राचीनकाल से ही बहुत प्रसिद्ध है। इस देश में आनेवाले अन्य विदेशियों ने गणित एवं ज्योतिष का अध्ययन यहाँ किया था और मुक्त-कंठ से भारतीय ज्योतिषियों की प्रशंसा की थी। इसलिए जब मद्रास के गवर्नर सर चार्ल्स ओकले ने सन् १७९२ में एक वेधशाला बनवाकर उसपर यह अंकित कराया—"हजारों साल बाद की संतति को ज्ञात हो कि एशिया में गणित का प्रसार अंग्रेजों ने किया", तो उसका यह कार्य बड़ा हास्यास्पद-सा प्रतीत हुआ। सर चार्ल्स ओकले को या तो भारतीय ज्योतिष की जानकारी नहीं थी अथवा उसने जान-बूझकर अनजान

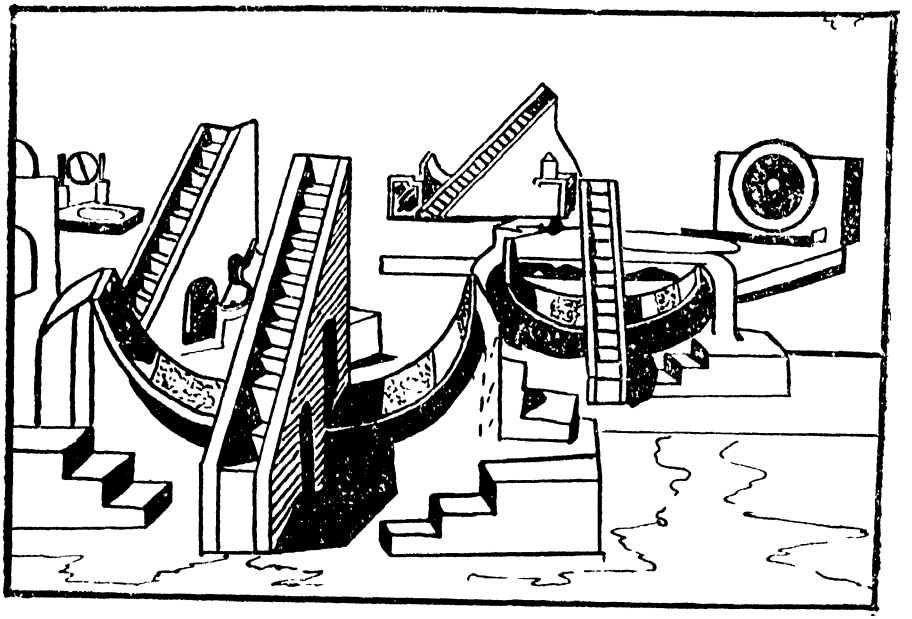

बनने की कोशिश की। जैसी वेधशालाएँ सर चार्ल्स ओकले ने स्थापित की थीं, वैसी वेधशालाएँ तो भारत के अन्य नगरों में बहुत प्राचीनकाल में ही स्थापित थीं। इनमें महाराज जयसिंह की बनवाई उज्जैन, जयपुर, दिल्ली, मथुरा और वाराणसी की वेधशालाएँ बहुत प्रसिद्ध थीं। दिल्ली की वेधशाला पर धन और समय दोनों ही बहुत अधिक खर्च किया गया था। 'जन्तर-मन्तर', जो इस वेधशाला का नाम था, सात वर्ष के परिश्रम से तैयार हुआ था। इसका सबसे बड़ा यंत्र १८५ फुट लम्बा, १२० फुट चौड़ा और ६८ फुट ऊँचा है।

महाराज जयसिंह ने जिन वेधशालाओं का निर्माण कराया था, उनमें ज्योतिषशास्त्र तथा सूर्य की स्थिति से ग्रहों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती थी। इसके विपरीत आधुनिक वेधशालाओं में ब्रह्मांड और ग्रहों आदि की भौतिक रचना का ज्ञान आधुनिक यन्त्रों की सहायता से प्राप्त किया जाता है। इन आधुनिक वेधशालाओं में एक तो मौसम-सम्बन्धो अध्ययन किया जाता है और दूसरे खगोल विद्या और चुम्बकीय अध्ययन का आयोजन है। मौसम-सम्बन्धी अध्ययन के लिए दिल्ली, पूना, कोलाबा और अलीबाग में वेधशालाएँ स्थापित को गईं, तथा खगोल विद्या के अध्ययन के लिए कोदाईकनाल, नैनीताल और हैदराबाद में वेधशालाएँ स्थापित की गईं। दोनों वेध-शालाओं की रचना और कार्य-प्रणाली में अन्तर है। आगे दोनों प्रकार की वेधशालाओं का परिचय दिया गया है।

मौसम के सम्बन्ध में जो वेधशालाएँ स्थापित की जाती थीं उनका उद्देश्य भारत के मौसम के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना होता था। इसके साथ ही साथ भूकम्प, सूर्य, तारागण आदि के सम्बन्ध में अध्ययन भी इन्हीं वेधशालाओं में किया जाता था। मौसम-सम्बन्धी कार्य सन् १८७५ में भारतीय ऋतु अनुसंधान विभाग की स्थापना के पश्चात् ही सुव्यवस्थित रूप में चला। उसके पूर्व यह कार्य बड़ा अव्यवस्थित-सा था।

इस सम्बन्ध में दिल्ली-स्थित वेधशाला देश की अन्य ऋतु-वेधशालाओं का भी नियन्त्रण करती है। इस वेधशाला में हवा, पानी, भूकम्प आदि का अध्ययन किया जाता है और उससे सम्बन्धित अनेक यन्त्र भी यहाँ लगे हैं। इसी वेधशाला का एक विभाग सफदरजंग हवाई अड्डे पर वैमानिकों को मौसम की सूचना देने के लिए स्थापित किया गया है। यहीं पर रेडार यन्त्र के द्वारा २०० मील तक के तूफान और वर्षा का पता लगाकर मौसम की भविष्यवाणी की जाती है। वेधशाला से समय-समय पर गुब्बारे छोड़कर वायुमण्डल के ताप आदि के बारे में जानकारी प्राप्त को जाती है।

इसी प्रकार का केन्द्र पूना में भी है। इस केन्द्र में न केवल भारत के मौसम का चार्ट तैयार किया जाता है, अपितु पश्चिमी एशिया, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका तथा अन्य अनेक देशों के मौसम के सम्बन्ध में चार्ट बनाया जाता है। किसानों के लिए मौसम को भविष्यवाणी इसी वेधशाला से की जाती है।

कोलाबा में जो वेधशाला बनाई गई थी उसने सन् १८४१ से कार्य करना प्रारम्भ किया। बाद में यहाँ के चुम्बकीय यन्त्र अलोबाग भेज दिए गए। इस प्रकार मौसम के सम्बन्ध में यही प्रमुख तीन वेधशालाएँ कार्य कर रही हैं।

दूसरे प्रकार की वेधशालाएँ कोदाईकनाल, नैनीताल और हैदराबाद में स्थित हैं। इनमें कोदाई कनाल की वेधशाला विश्व की सबसे बड़ी वेधशालाओं में से है। इस वेधशाला की स्थिति सूर्य और तारागणों के अध्ययन के लिए बड़ी अनुकूल है। ७८१० फुट ऊँचाई पर स्थित होने तथा विषुवत रेखा से केवल १० अंश उत्तर में स्थित होने के कारण यहाँ से सूर्य का अध्ययन बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता है। इसी कारण सन् १८९८ में इस वेधशाला को मद्रास से कोदाईकनाल ले जाया गया। इस वेधशाला से दो पंचांग प्रकाशित किए गए थे, जिनमें से एक में ११ हजार तारागणों तथा दूसरे में ५ हजार तारागणों के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान था।

सन् १८७६-७७ में जब मद्रास में एक भीषण अकाल पड़ा तो उसके कारणों की जाँच करने के सम्बन्ध में नियुक्त जाँच आयोग ने यह भी सिफारिश की कि भारत में सौर वेधशालाओं की स्थापना की जाए। मद्रास में पहले से ही वेधशाला थी जो पहले मद्रास सरकार की देखरेख में काम करती थी, किन्तु बाद में भारत सरकार ने इसे अपने नियन्त्रण में ले लिया। सन् १९०० से वेधशाला में मौसम के सम्बन्ध में कार्य होने लगा। सूर्यग्रहण के चित्रों को लेकर उनका अध्ययन भी करना प्रारम्भ हुआ। आधुनिक यन्त्रों से सुसज्जित इस वेधशाला के यन्त्र सूर्योदय होते ही अपना काम प्रारम्भ कर देते हैं। जिन यन्त्रों से सूर्य का प्रेक्षण किया जाता है उनमें स्पैक्ट्रोस्कोप,

फोटोहीलियोग्राफ, स्पैक्ट्रो-हीलियोस्कोप और स्पैक्ट्रो-हीलियोग्राफ प्रसिद्ध हैं। प्रारम्भ में इस वेधशाला में केवल सूर्य का अध्ययन किया जाता था, किन्तु जैसे-जैसे नवीन यन्त्रों से यह वेधशाला सुसज्जित होती गई वैसे ही वैसे सूर्य के अतिरिक्त असंख्य तारागणों के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन होने लगा। आज तो इस वेधशाला के अनेक विभाग हैं, जैसे—तारा भौतिकी विभाग, रेडियो एस्ट्रोनामी आदि।

कोदाईकनाल में सूर्य एवं तारागणों के अध्ययन के साथ-साथ इससे सम्बन्धित कुछ नवीन यन्त्रों का भी आविष्कार किया जाता है। अभी लगभग ३१ हजार रुपये का एक नवीन यन्त्र फ्रांस से मंगाया गया था—उसके शेष भाग कोदाईकनाल में ही बनाए गए थे। यह यन्त्र—परिज्वाल चित्रक—सूर्य के परिज्वाल मण्डल का अध्ययन करता है।

कोदाईकनाल की वेधशाला प्रारम्भ से ही अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सहयोग प्रदान करती रही है। सन् १९२८ से १९४५ तक इस वेधशाला में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्वेषण हुए। उन सबकी रिपोर्ट अन्तर्राष्ट्रीय खगोल संघ को भेज दी गई। सूर्य में तेज विक्षोभ होने पर फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशों को तार द्वारा यहाँ से सूचना भेजी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कार्यक्रमों में भाग लेकर कोदाईकनाल की वेधशाला ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

नैनीताल की वेधशाला, जिसकी स्थापना में डा० सम्पूर्णानन्द का विशेष योग था, ६,४०० फुट की ऊँचाई पर मनोरा चोटी पर स्थित है। अपने नौ वर्ष के अल्प जीवन में इस वेधशाला ने मंगल ग्रह के चित्र लिए और अरेण्ड रोलैण्ड तथा मर्कोस नामक दो धूमकेतुओं का भी अध्ययन किया। अन्य बारह वेधशालाओं में जिन्होंने शुक्र ग्रह द्वारा नक्षत्र के प्रच्छादन का अध्ययन किया था, नैनीताल की वेधशाला भी एक थी। अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कार्यक्रम में इस वेधशाला की ओर से चन्द्रमा के चित्र लिए गए, कृत्रिम उपग्रहों का पता लगाने का प्रयास किया गया और उनके परिभ्रमण मार्ग का सर्वेक्षण किया गया। अमेरिका से एक मार्कोविट्ज कैमरा, जिसका मूल्य लगभग १० लाख रुपये है, इसी कार्यक्रम में भाग लेने के फलस्वरूप प्राप्त हुआ। विश्व-भर में ऐसे कैमरों की संख्या केवल २० है। इसी वेधशाला में एक अन्य बहुमूल्य यन्त्र फोटो प्लांट है जिसका मूल्य ६ लाख रुपये है। इनकी संख्या विश्व में केवल १२ है।

हैदराबाद की निजामिया वेधशाला ने भी कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। सन् १९३१ में इस वेधशाला ने अवान्तर ग्रह ईरोज के अनेक चित्र खींचे। इस वेधशाला में भूकम्पों को भी अंकित किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में इस वेधशाला ने भी भाग लिया था।

इस प्रकार भारत में विभिन्न वेधशालाएँ सक्रिय रूप से सौर जगत् के सम्बन्ध में तथा वायुमण्डल की जानकारी के

सम्बन्ध में कार्यरत हैं। भारतीय वेधशालाओं ने अपना महत्त्व-पूर्ण सहयोग देकर अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कार्यक्रम को सफल बनाया है।

प्रश्न

१. भारत में प्राप्त होनेवाली प्राचीन वेधशालाएँ कौन-कौन-सी हैं ?

२. वेधशालाएँ कितने प्रकार की होती हैं ? प्रत्येक के पृथक्-पृथक् कार्य बताइए।

३. कोदाईकनाल की वेधशाला की क्या विशेषताएँ हैं ? इसकी प्रसिद्धि का क्या कारण है ?

४. नैनीताल और हैदराबाद की वेधशालाएँ किस कोटि की हैं ? इन वेधशालाओं ने क्या महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं।

: १४ :

कृत्रिम वस्त्र

वस्त्रों का उत्पादन केवल कपास और रेशम से ही सम्भव है—यह कथन अब अनुपयुक्त सिद्ध हो गया है। आज ऐसी वस्तुओं से वस्त्रों का निर्माण किया जा रहा जिन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। कृत्रिम ढंग से तैयार किए गए वस्त्र कपास और रेशम के वस्त्रों से अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसी कारण इनका प्रचलन समाज में बहुत अधिक बढ़ गया है। ऐसे वस्त्रों में रेयान, नायलान, टैरीलीन आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

रेयान—आज रेयान के कपड़ों का समाज में बड़ा प्रचलन है। रेयान का उद्‌गम हुआ पेड़ या अन्य वानस्पतिक पदार्थों

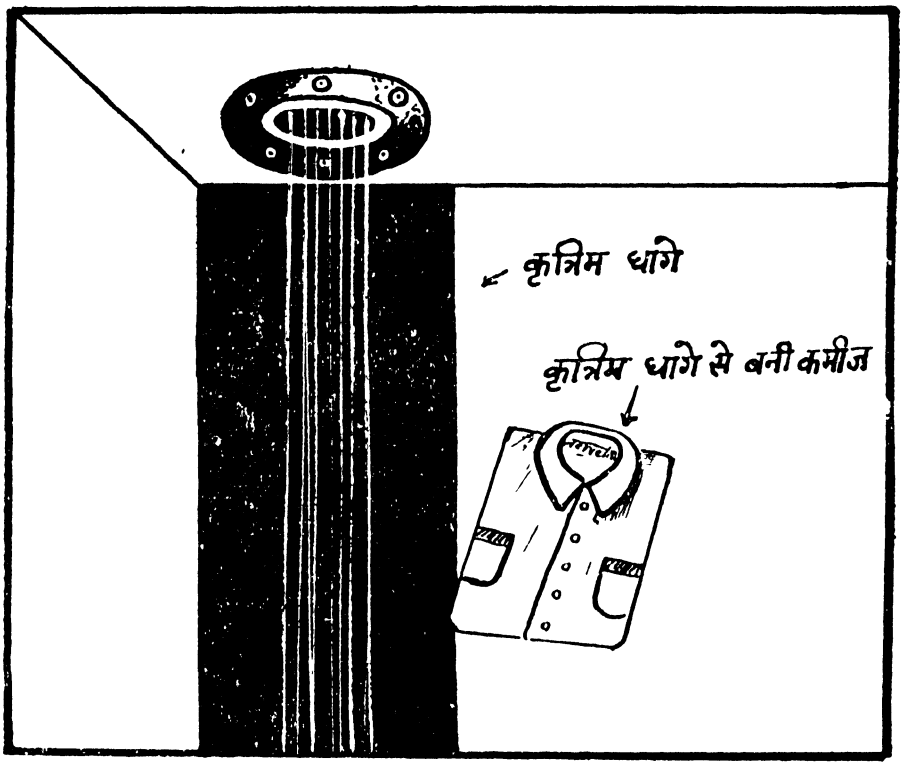

से। इसका कारण यह है कि कृत्रिम वस्त्रों का निर्माण सेल्यूलोस की जानकारी से ही सम्भव हुआ। बड़े-बड़े पेड़ों में सेल्यूलोस बहुत मात्रा में उपलब्ध होता है, जिससे रेयान तैयार किया जाता है।

रेयान विस्कोस विधि से तैयार किया जाता है। इस विधि के जन्मदाता स्टर्म और तुफैम हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम सन् १९०५ में रेयान तैयार किया था। कैनाडा और स्कैण्डीनेविया में स्प्रस नाम का एक वृक्ष पाया जाता है। इसी वृक्ष से रेयान

के लिए सेल्यूलोस प्राप्त होता है। स्प्रूस की छीलन को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर रासायनिक पदार्थों के साथ उबालते हैं। इससे जो विजातीय पदार्थ रहते हैं वे हटा दिए जाते हैं। अब जो लुग्दी प्राप्त होती है उसे विशुद्ध रूप देने के लिए एक बार पुनः विरंजक पदार्थों के साथ क्रिया कराई जाती है। इस प्रकार विशुद्ध रूप में सेल्यूलोस प्राप्त होता है। इस सेल्यूलोस को सुखा लेते हैं। सूखा सेल्यूलोस फैक्ट्री में भेज दिया जाता है। यहाँ सांद्र कास्टिक सोडा के विलयन तथा कार्बन डाइसल्फाइड के साथ प्रतिक्रिया कराई जाती है। अब इसका आकार एक जैली के समान हो जाता है, जिसका रंग पीला होता है। इसे ही विस्कोस कहते हैं। इसे प्लेटीनम गोल्ड मिश्रित धातु के साँचे में से गुजारते हैं। इस प्रकार रेयान के बारीक धागे प्राप्त होते हैं। मजबूत बनाने के लिए ये धागे सल्फ्यूरिक अम्ल और सोडियम सल्फेट के घोल में डाले जाते हैं। इस प्रकार विस्कोस विधि से रेयान तैयार किया जाता है।

रेयान बनाने की दूसरी विधि ऐसीटेट विधि भी है। विशुद्ध सेल्यूलोस को ऐसिटिक और ऐसिटिक एनहाइड्राइड से क्रिया कराने पर यह गाढ़े द्रव के रूप में परिवर्तित हो जाता है। बाद में इस गाढ़े द्रव को पतले परत के रूप में अवक्षेपित कर लिया जाता है। इस पदार्थ को ऐसीटोन में विलय कर देते हैं। इसे साँचे में से धागा बनाने के लिए निकालते हैं। यह धागा कुछ मोटा होता है। धागा एक ऐसे कमरे में से निकाला जाता है जिसमें

१००° सेण्टीग्रेड ताप की हवा भेजी जाती है। इससे धागा सूख जाता है और मजबूत हो जाता है। विस्कोस विधि से जो धागा प्राप्त किया जाता है वह अत्यन्त पतला होता है, किन्तु ऐसीटेट विधि से प्राप्त धागा मोटा होता है।

नायलान—नायलान का निर्माण कोयला, हवा और पानी से किया जाता है। कोयले से फिनोल और कार्बोलिक अम्ल, हवा से आक्सीजन और पानी से हाइड्रोजन—ये पदार्थ नायलान के रेशे बनाने के काम आते हैं। नायलान पर कार्बनिक-द्वि-अमीन तथा डाइ-कार्बोक्सिलिक अम्ल की प्रतिक्रिया कराते हैं। इस प्रतिक्रिया में अणुओं का बहुलीकरण हो जाता है। इस तरह प्राप्त पदार्थ को "नायलान पालीमर" कहते हैं। इस रासायनिक क्रिया में १०० अणु शृंखलात्मक संयोजकता को पूर्ण करते हुए एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। इस तरह इन पदार्थों में कई बार रासायनिक क्रिया कराई जाती है। अन्त में एक श्वेत रंग का पर्तोंवाला पदार्थ प्राप्त होता है। इस पदार्थ को बाद में पिघला लिया जाता है। तब इसे साँचे के भीतर ऊँचे दाब के पम्प द्वारा दबाकर गुजारते हैं जिससे इसके बहुत बारीक रेशे प्राप्त होते हैं। साँचे के पास बहती गर्म हवाओं के झोंके इन रेशों को साँचे से बाहर निकलने के पश्चात् स्पर्श करते हैं। इस कारण ये रेशे बहुत अधिक दृढ़ हो जाते हैं। अब रेशों को बारीक बनाने के लिए ठण्डे साँचों में से गुजारते हैं। इस तरह रेशे की लम्बाई बहुत अधिक बढ़ जाती है।

नायलान के अनेक गुण हैं । सबसे पहला गुण तो यह है कि यह बहुत मजबूत होता है । समान मोटाई लेने पर नायलान इस्पात से भी मजबूत होता है । इसके इसी गुण के कारण पैराशूट बनाने में, मामूली जहाजों तक को खींचने के लिए रस्सियाँ बनाने में इसका उपयोग किया जाता है । दूसरे नायलान में कभी कीड़े नहीं लग सकते । तीसरे यह अत्यन्त लचकशील होता है जिससे इसके बने वस्त्र कभी सिकुड़ते नहीं ।

नायलान की भाँति ही दो अन्य पदार्थ—आरलान और एक्रिलम—और हैं जो एसाइलोनाइट्राइल के बहुलीकरण द्वारा प्राप्त होते हैं । एक्रिलम के शामियाने और पाल बनाए जाते हैं ।

टैरीलीन—अमेरिका के विनफील्ड तथा डिक्सन ने डक्रान के रेशों की खोज की । यही डेक्रान इंग्लैण्ड में टैरीलीन कहलाता है । भारत में भी इसे टैरीलीन ही कहते हैं । डेक्रान के धागे बनाने के लिए एथिलीन ग्लाइकोल तथा टैरीथैलिक अम्ल की आवश्यकता होती है । आजकल सभ्य समाज में टैरीलीन के वस्त्रों का बहुत प्रचलन है । टैरीलीन के वस्त्र बड़े मजबूत और स्निग्ध होते हैं ।

प्रोटीन द्वारा प्राप्त धागे—प्रोटीन से भी कुछ धागे प्राप्त किए जाते हैं । सबसे पहले इटली में दूध के केसीन द्वारा धागे

बनाए गए थे। ऊन के समान ही इन धागों की रचना होती है। इन धागों का प्रयोग ऊन के साथ बहुधा किया जाता है। इन धागों में भी प्रचुर मात्रा में उन्नति हो सकती है, क्योंकि प्रोटीन तो बहुत-से पदार्थों से प्राप्त होता है।

वस्त्र-व्यवसाय में रुचि लेनेवाले व्यक्ति अभी भी नए-नए रेशों के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं। यह सम्भव है कि थोड़े ही समय में ऐसे वस्त्रों का निर्माण हो सके जो न तो जल्दी फटें और न जिनके ऊपर जल, अग्नि आदि का ही कुछ प्रभाव हो सके। कल इस दिशा में क्या होगा, कोई नहीं कह सकता।

प्रश्न

१. वस्त्रों का उत्पादन किन वस्तुओं से अधिक किया जाता है ?
२. रेयान बनाने की कौन-कौन-सी विधियाँ हैं ?
३. नायलान किस प्रकार बनाया जाता है ? इसके कौन-कौन से गुण हैं ?
४. टैरीलीन किन पदार्थों से बनता है ? यह इतना अधिक उपयोगी क्यों है ?

: १५ :

लक्ष्य-भेदी अस्त्र

महाभारत-काल में कई स्थलों पर ऐसे धनुर्धारियों का उल्लेख आया है जो लक्ष्य-भेदी बाण मारते थे। अर्जुन का बाण जयद्रथ के सिर को जंगल में ले गया था जहाँ उसका पिता तपस्या करने में लीन था। पिता की गोद में जयद्रथ का सिर पटक कर बाण वापस लौट आया था। उत्तरा के गर्भस्थित भ्रूण को हत्या करने के लिए अश्वत्थामा ने एक शक्ति छोड़ी थी। इस प्रकार उच्च कोटि के धनुर्धारी ऐसी शक्तियों का ही प्रयोग करते थे जो लक्ष्य पर ही जाकर लगती थीं।

लक्ष्य-भेदी बाण केवल भारत में ही प्रचलित नहीं थे, अन्य देशों में भी प्रचलित थे। आस्ट्रेलिया के मूल निवासी तो अभी

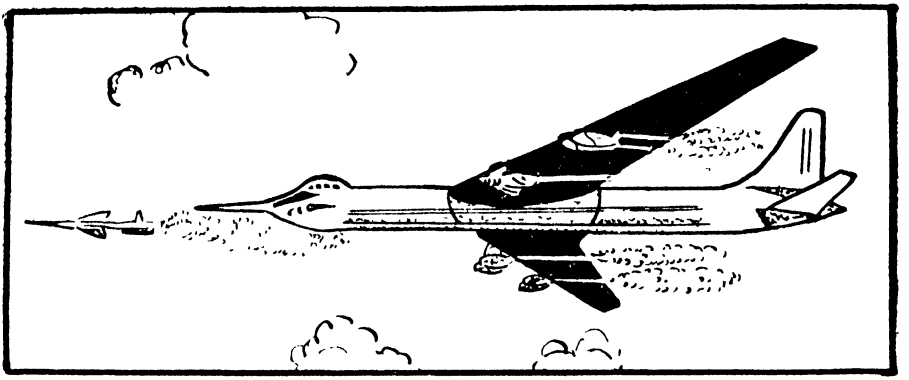

भी बूमरैंग नामक एक लक्ष्य-भेदी अस्त्र का प्रयोग करते हैं, जो निशाना चूक जाने पर वापस अस्त्र फेंकनेवाले के समीप ही आ जाय। आधुनिक युग में इसी प्रकार के कुछ अस्त्रों का आविष्कार किया गया है जो सीधे लक्ष्य पर जाकर लगते हैं। इन अस्त्रों को निर्देशित भी किया जा सकता है—अर्थात् अस्त्र छाड़ने के पश्चात् यदि कहीं बहक जाय तो उसे नियन्त्रित किया जा सकता है। वह ऐसे अस्त्रों को निर्देशित क्षेप्यास्त्र कहते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के समय कुछ ऐसे अस्त्रों का निर्माण हुआ था जिनके कल-पुर्जों को एक बार व्यवस्थित कर देने पर वे लक्ष्य तक पहुँच जाते थे। ऐसे नियन्त्रित क्षेप्यास्त्रों में सबसे बड़ी कमी यह थी कि यदि इस बीच कहीं लक्ष्य इधर से उधर भटक गया तो निशाना चूक जाता था। किन्तु रैडार के

आविष्कार ने इस कमी को दूर कर दिया। रैडार रेडियो-तरंगों की सहायता से लक्ष्य को स्वयं खोज लेता है। अतः अब जो निर्देशित क्षेप्यास्त्र छोड़े जाते हैं वे प्रायः अचूक रहते हैं। इन क्षेप्यास्त्रों का प्रयोग करनेवाला सबसे प्रथम देश जर्मनी था। अमेरिका, ब्रिटेन और रूस आदि ने ऐसे अस्त्रों का निर्माण बाद में किया।

निर्देशित क्षेप्यास्त्रों का विभाजन उनके कार्य के अनुसार चार भागों में किया जा सकता है। प्रथम क्षेप्यास्त्र ऐसे होते हैं जो धरातल से धरातल पर ही फेंके जाते हैं; दूसरे इस प्रकार के होते हैं जो धरातल से वायुमण्डल में फेंके जाते हैं; तीसरे ऐसे होते हैं जो वायुमण्डल से वायुमण्डल में ही फेंके जाते हैं और चौथे इस प्रकार के होते हैं जो वायुमण्डल से धरातल पर फेंके जाते हैं।

धरातल से धरातल पर फेंके जानेवाले क्षेप्यास्त्रों का सबसे बड़ा उपयोग यह है कि ये क्षेप्यास्त्र उन स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए छोड़े जा सकते हैं जहाँ पर युद्ध की सामग्री का निर्माण होता है अथवा जो युद्ध की दृष्टि से विशेष महत्त्व-पूर्ण हों। बड़े-बड़े टैंकों आदि को विध्वंस करने के लिए भी इन क्षेप्यास्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इन क्षेप्यास्त्रों का युद्ध की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। इसलिए जिन देशों ने इनका निर्माण किया है वे इसकी रचना-प्रक्रिया को गोपनीय ही रखते हैं। फिर भी इतना अवश्य ज्ञात है कि ऐसे निर्देशित

क्षेप्यास्त्र ८०० किलोमीटर तक के लक्ष्य को २५,००० किलोमीटर की गति से चलकर विध्वस्त कर सकते हैं। इन अस्त्रों की गति को देखकर कहा जा सकता है कि बड़े से बड़े समुद्र को ये २०-३० मिनट में ही पार कर सकते हैं। परमाणु बम भी इनके साथ जा सकता है।

दूसरे प्रकार के क्षेप्यास्त्र वे हैं जो **धरातल से वायुमण्डल पर** छोड़े जाते हैं। इन क्षेप्यास्त्रों का उद्देश्य बम-वर्षक वायुयानों को नष्ट-भ्रष्ट करना है। निर्देशित क्षेप्यास्त्र १,२०० किलोमीटर तक की ऊँचाई की दूरी में किसी भी बमवर्षक को जमीन पर गिरा सकता है। टैरियर जाति के क्षेप्यास्त्र २० से ४० फुट तक लम्बे होते हैं और धरातल से वायुमण्डल में छोड़े जाते हैं।

तीसरे प्रकार के क्षेप्यास्त्र वे हैं जो '**वायुमण्डल से वायुमण्डल** में छोड़े जाते हैं। जब किसी शत्रु के विमानों पर विमानों से ही आक्रमण करना पड़ता है तब इस प्रकार के क्षेप्यास्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। स्पैरो राकेट जिसकी लम्बाई लगभग ८$\frac{1}{4}$ फुट है, ८-१० मील के भीतर के किसी भी बम-वर्षक को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। यह राकेट जिस वायुयान से छोड़ा जाता है, उसी वायुयान से प्रसारित रेडियो किरणों के द्वारा उसका मार्ग निर्देशन होता है।

चौथे प्रकार के क्षेप्यास्त्र वे हैं जो **वायुमण्डल से धरातल पर** छोड़े जाते हैं। समुद्र में चलनेवाले जहाजों, पनडुब्बियों आदि पर यों तो आक्रमण धरातल से भी होता है साथ ही इस कोटि के क्षेप्यास्त्रों से भी उनपर आक्रमण किया जाता है। इन क्षेप्यास्त्रों का दूसरा प्रयोग महत्त्वपूर्ण स्थलों पर वायुयान के द्वारा आक्रमण करना है। जैसा बताया गया है कि ऐसे क्षेप्यास्त्रों को वायुयान से धरातल पर छोड़ा जाता है। अतः इन्हें वायुयान में ले जाना पड़ता है। इसीलिए इनका आकार सीमित होता है। ऐसे क्षेप्यास्त्रों की प्रहार शक्ति १०० मील के दायरे में रहती है।

सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने के कारण किसी भी देश ने इन क्षेप्यास्त्रों की गोपनीय रचना के सम्बन्ध में प्रकाश नहीं डाला है। जितनी जानकारी है उसके अनुसार इन क्षेप्यास्त्रों के मुख्य ५ भाग हैं—

१. **विस्फोटक अंग**—क्षेप्यास्त्र के अग्रभाग में, जो लगभग सिगार के आकार का होता है, फ्यूज रहता है और वहीं विस्फोटक पदार्थ भी रहते हैं। जब यह क्षेप्यास्त्र जाकर अपने लक्ष्य पर लगता है तो फ्यूज के जलने से विस्फोटक पदार्थ तुरन्त अपना कार्य करते हैं। इस प्रकार लक्ष्य विध्वस्त हो जाता है।

२. **निर्देशक अंग**—क्षेप्यास्त्रों का मार्ग-दर्शन रेडार से किया जाता है। जो क्षेप्यास्त्र अधिक दूरी पर छोड़े जाते हैं उनके लिए दूसरा सहायक होता है। रेडार की सहायता प्राप्त होने से क्षेप्यास्त्रों का लक्ष्य-भेद अचूक रहता है। यह मार्ग-निर्देशन निम्न प्रकारों में से किसी एक प्रकार का होता है।

(अ) **किरण निर्देशन**—किरण पुंजों के बीच में, जो लक्ष्य के ऊपर हैडक्वार्टर से छोड़ी जाती हैं, चलता है और उचित समय पर लक्ष्य पर आक्रमण कर देता है।

(ब) **लक्ष्यग्राही क्षेप्यास्त्र**—क्षेप्यास्त्र रेडियो-तरंगें प्रसारित करता है। ये तरंगें लक्ष्य पर जाकर लगती हैं और फिर लौटकर आती हैं। क्षेप्यास्त्र इन तरंगों की दिशा में ही चलता है। कुछ क्षेप्यास्त्र ऐसे भी हैं जो लक्ष्य से ही निर्देश लेकर—ऊष्मा-किरणों आदि में—उसका पीछा करके उसे नष्ट-भ्रष्ट करते हैं।

३. **नियन्त्रक अंग**—ये अंग जब लघु तरंगों से निर्देश प्राप्त कर लेते हैं तो वे क्षेप्यास्त्र के पंख और पंखुड़ियों को उचित मार्ग-दर्शन कराते हैं।

४. **चालक अंग**—क्षेप्यास्त्र प्रतिक्रिया सिद्धान्त पर चलते हैं। जिस प्रकार गुब्बारे में से हवा निकलने पर गुब्बारा पीछे की ओर भागता है ठीक इसी प्रकार क्षेप्यास्त्रों के पिछले भाग

में जो ज्वलनशील और आक्सीकारक पदार्थ रहते हैं उससे प्राप्त गैसों की प्रतिक्रिया से क्षेप्यास्त्र आगे की ओर बढ़ता है।

५. **आवरण**—क्षेप्यास्त्रों का आकार सिगार की भाँति बनाया जाता है जिससे चलने में हवा कम से कम रुकावट डाले। इनका आवरण एल्यूमिनियम का बना होता है।

निर्देशित क्षेप्यास्त्रों की अपनी विशेषताएँ हैं। इनमें किसी चालक की आवश्यकता नहीं होती। ये अस्त्र हर मौसम में चलाए जा सकते हैं। हवा की रगड़ से गरम हो जाने पर भी इन्हें कोई हानि नहीं। इतना होने पर भी इनमें अभी कुछ दोष हैं। क्षेप्यास्त्र किसी एक बिन्दु पर नहीं पहुँच सकते—उसके आसपास ही पहुँचेंगे। इन क्षेप्यास्त्रों को शत्रु रेडियो-तरंगों के द्वारा मार्ग-भ्रष्ट कर सकते हैं। कभी-कभी तो शत्रु इनकी दिशा भी उलट सकता है जिससे ये क्षेप्यास्त्र अपने छोड़े जाने के स्थान पर ही आकर विस्फोट कर सकते हैं।

इन दोषों के होते हुए भी आज इन क्षेप्यास्त्रों का बहुत महत्त्व बढ़ रहा है। इनके निर्माण में विभिन्न देशों में होड़ लगी हुई है।

प्रश्न

१. लक्ष्य-भेदी बाण प्राचीनकाल में किस रूप में उपलब्ध थे ?

२. निर्देशित क्षेप्यास्त्रों को कितने विभागों में बाँटा जा सकता है ?

३. क्षेप्यास्त्रों की रचना-प्रक्रिया की जितनी जानकारी प्राप्त है उसे बतलाइए ।

४. निर्देशित क्षेप्यास्त्रों के गुण-अवगुणों पर प्रकाश डालिए ।

: १६ :

यातायात के साधनों में परमाणु ऊर्जा का प्रयोग

विज्ञान मानव समाज के लिए वरदान भी है और अभिशाप भी। वरदान के रूप में विज्ञान ने यातायात के साधनों का आविष्कार किया, छापने की मशीन बनाई, चिकित्सा की नवीन प्रणालियाँ प्रारम्भ कीं और अभिशाप के रूप में हिरोशिमा और नागासाकी का विनाश हम देख-सुन चुके हैं। यह निस्सन्देह सत्य बात है कि वैज्ञानिक अपने ज्ञान को विनाशकारी कार्यों में नहीं लगाना चाहता, किन्तु देश के राजनीतिज्ञ उसे ऐसा करने के लिए मजबूर कर देते हैं। मानवता का विनाश देखकर वैज्ञानिक का हृदय भी हाहाकार करने लगता

है। कौन जानता है कि हिरोशिमा और नागासाकी का विध्वंस देखकर आइन्स्टीन के हृदय पर क्या बीती हो ?

वैज्ञानिक सदा मानव जाति के कल्याण के लिए ही सोचता है। परमाणु की जिस ऊर्जा पर परमाणु बम का आविष्कार किया गया था, उसी ऊर्जा को रचनात्मक कार्यों में लगाने के लिए वैज्ञानिक सतत प्रयत्नशील थे। अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने इसी सम्बन्ध में यह सुझाव दिया कि एक गेंद के बराबर यूरेनियम की ऊर्जा से एक जहाज अटलाण्टिक महासागर को पार कर सकता है। इस दिशा में बराबर प्रयत्न होते रहे और अन्त में परमाणु रिएक्टर का आविष्कार हुआ। इसका उपयोग सबसे पहले, जहाँ तक यातायात के साधनों का सम्बन्ध है, जलयानों में किया गया। अमेरिका ने परमाणु ऊर्जा से चलनेवाला जलपोत सन् १९५५ में समुद्र में उतारा। किन्तु सत्य बात यह है कि यह एक पनडुब्बी के आकार का था जिसका कि युद्ध की दृष्टि से ही निर्माण किया गया था। इस पनडुब्बी ने जिसको नाटिलस कहते थे ८ पौण्ड यूरेनियम से ६० हजार मील की यात्रा पूरी की, जिसके लिए १० हजार टन तेल की आवश्यकता पड़ती।

अपने प्रथम प्रयास में सफलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् अमेरिका ने इसी प्रकार की आठ और पनडुब्बियों का निर्माण किया। ट्रिटम नामक पनडुब्बी में तो एक के स्थान पर

दो परमाणु रिएक्टर लगाए गए हैं। परमाणु ऊर्जा से चालित पनडुब्बियों की कार्यक्षमता अन्य पनडुब्बियों की अपेक्षा अधिक होती है। न तो इन पनडुब्बियों को बार-बार ईंधन लेने की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि एक बार थोड़ा सा यूरेनियम लेकर ये कई दिनों तक समुद्र के भीतर ही भीतर यात्रा कर सकती हैं। इनके इञ्जिनों को वायुमण्डल की हवा की भी आवश्यकता नही पड़ती है।

अमेरिका की देखादेखी इंग्लैण्ड और रूस भी परमाणु ऊर्जा से चालित पनडुब्बियों का निर्माण करने में प्रयत्नशील हैं। इंग्लैण्ड ड्रेडनाट नामक पनडुब्बी का निर्माण कर रहा है। रूस ने 'लेनिन' नामक वर्फतोड़ जहाज का निर्माण किया है जो परमाणु ऊर्जा से चालित होता है। इस जहाज की अनेक विशेषताएँ हैं। ६ फीट मोटी बर्फ की तह को यह आसानी से तोड़ सकता है। ध्रुव प्रदेश में बिना ईंधन लिए यह महीनों चक्कर लगा सकता है। यह इतना विशाल है कि इस पर १६,००० टन सामान लादा जा सकता है। इसके डैक पर हैलीकोप्टर भी सर्वेक्षण के लिए ले जाया जा सकेगा।

यातायात के लिए परमाणु ऊर्जा से चालित जहाजों का भी निर्माण किया जा रहा है। इस प्रकार के अमेरिका के प्रथम जहाज सवान्हा की लम्बाई ६०० फुट और चौड़ाई ७८ फुट है। ९,५०० टन सामान, ६० यात्री तथा १०० कर्मचारियों

को लेकर सवान्हा एक वार ईंधन प्राप्त कर लेने पर तीन वर्ष तक बरावर भ्रमण करता रहेगा। इस जहाज में भी यूरेनियम का उपयोग होता है। रिएक्टर की शक्ति से चलनेवाले भाप के टर्बाइन द्वारा इसके प्रत्येक स्क्रू प्रोपेलर को २२ हजार अश्व-शक्ति मिलेगी।

इस जहाज का निर्माण करने में ४ करोड़ डालर खर्च हुए हैं। यात्रियों को रेडियो-सक्रिय किरणों के स्पर्श के खतरे से बचाने के लिए रिएक्टर को ५० फुट लम्बे तथा ३५ फुट चौड़े इस्पात के पीपे में बन्द किया गया है। यह पीपा जहाज के संतुलन को एक-सा बनाए रखने के उद्देश्य से ठीक बीचोंबीच रखा गया है। ब्रिटेन भी इस दिशा में प्रयत्नशील है और परमाणु ऊर्जा द्वारा चालित जहाजों का निर्माण ५-६ वर्षों में पूरा कर लेगा।

परमाणु रिएक्टरवाले जहाज यों तो बड़े लाभदायक सिद्ध हुए हैं, किन्तु उनमें खर्च बहुत अधिक पड़ता है। इस खर्च को कम करने के लिए यह सुझाव दिया गया है कि ऐसे परमाणु रिऐक्टर जहाजों का निर्माण हो जो बिना इंजनवाले कई जहाजों को समुद्र में खींचकर ले जा सकें। इंजन-युक्त जो जहाज इन अन्य जहाजों को खींचेगा उस पर न तो माल रहेगा और न कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य कोई आदमी। इस प्रकार के यातायात से यह लाभ होगा कि जिन जहाजों पर

इंजन नहीं लगेगा उनपर कोई अधिक खर्च नहीं आएगा। ऐसे जहाजों के ढाँचे प्लास्टिक के भी बनाए जा सकते हैं। यदि यह योजना सफल हो गई तो समुद्री यातायात में एक नवीन परिवर्तन आ जाएगा।

परमाणु ऊर्जा का जलयान में प्रयोग करना जितना सुगम है, वायुयान में प्रयोग करना उतना ही दुष्कर है। इसका कारण एक तो यह है कि परमाणु रिएक्टर की कार्यक्षमता पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उड़ते हुए यान का रिएक्टर यदि दुर्भाग्यवश काम करना बन्द कर देता है तो ऐसी भयावह स्थिति में यात्रियों को किस प्रकार बचाया जा सकेगा। केवल उसमें बैठनेवाले यात्रियों की ही जान को खतरा नहीं है अपितु जिस स्थान पर यान गिरेगा उसके आसपास भी बहुत दूर तक धन-जन की हानि होगी। इस खतरे से बचने के लिए यह सुझाव दिया गया है कि वायुयानों में दो रिएक्टर लगाए जायें। यदि एक काम करना बन्द कर दे तो दूसरे को चालू कर दिया जाए। किन्तु इस सुझाव में यह व्यावहारिक कठिनाई है कि एक यान में दो रिएक्टर फिट कर देने से जहाज का पृथ्वी से उड़ना ही कठिन हो जाएगा। दूसरी बात, रिएक्टर को किसी पीपे में बन्द किया जाना चाहिए। जहाज में दो पीपे बनाकर रखने से फिर उसमें यात्रियों के बैठने के लिए अथवा माल आदि रखने के लिए कितना स्थान शेष रह सकेगा। एक

अन्य कठिनाई इस सम्बन्ध में यह है कि जब वायुयान को हवाई अड्डे पर उतारा जाता है तो उसकी शक्ति को एकदम घटा दिया जाता है। परमाणु रिएक्टर की शक्ति को एकदम घटाना असम्भव है। वायुयानों में उपयुक्त ईंधन का भी प्रश्न है। प्लेटीनम का उपयोग, जैसाकि सुझाव दिया जाता है, काफी जटिल है। अतः इन बातों से तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रिएक्टर-युक्त वायुयानों का यातायात के लिए उपयोग बड़ा कठिन है। हाँ, युद्ध के उद्देश्य से यदि ऐसे वायुयानों का निर्माण किया जाए तो वे सफल हो सकते हैं; क्योंकि युद्ध-सामग्री के निर्माण के लिए न तो खर्च ही देखा जाता है और न इस सम्बन्ध में तनिक भी चिन्ता की जाती है कि कौन मर रहा है, कौन जी रहा है। अमेरिका में ऐसे ही वायुयानों का निर्माण हुआ है किन्तु उनमें पैट्रोल का इंजिन भी फिट रहता है। रिएक्टर-युक्त यानों में ईंधन की अवश्य बहुत बचत होगी। जो स्थान पैट्रोल के लिए प्रयुक्त होता है, उसमें सामान जा सकेगा। थोड़े-से यूरेनियम से वायुयान हजारों मील जा सकेगा।

मोटर कार और रेलगाड़ी में रिएक्टर लगाना अव्यवहारिक ही होगा। परमाणु-शक्ति से चालित विद्युत् पावर हाउस की विद्युत्धारा से ही रेलगाड़ियों को चलाना उपयुक्त और सुविधाजनक होगा।

वैज्ञानिक यातायात के लिए परमाणु ऊर्जा का अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। हमें इस ओर काफी आशावान रहना चाहिए।

प्रश्न

१. वैज्ञानिक अनुसन्धानों में वैज्ञानिकों का क्या उद्देश्य रहता है ?

२. परमाणु रिएक्टर का आविष्कार कैसे हुआ ?

३. परमाणु रिएक्टर का सफल प्रयोग करनेवाला पहला देश कौन-सा था ?

४. यातायात के लिए जलयानों में परमाणु रिएक्टर का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?

५. वायुयानों में परमाणु रिएक्टर का उपयोग क्यों कठिन है ?

६. क्या परमाणु रिएक्टर-युक्त मोटर और रेलगाड़ियाँ भी चलना सम्भव है ? यदि नहीं तो क्यों ?

: १७ :

शनि का पिता—यूरेनस

विभिन्न क्षेत्रों में जैसे-जैसे नवीन अनुसन्धान होते जाते हैं, वैसे ही वैसे हमारी प्राचीन मान्यताएँ समाप्त होती जाती हैं। हम कुछ समय पूर्व तक सोने को ही संसार का बहुमूल्य पदार्थ समझते थे, किन्तु प्लेटीनम की खोज ने हमारी इस मान्यता को समाप्त कर दिया और आज प्लेटीनम ही संसार में सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु मानी जाती है। यह सम्भव है कि अगले कुछ वर्षों में अनुसन्धानकर्ताओं के प्रयास से किसी अन्य वस्तु की खोज हो जोकि प्लेटीनम से भी मूल्यवान हो। सौरमण्डल के सम्बन्ध में भी हम जो मान्यताएँ बनाए बैठे थे वे भी आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व समाप्त हो गईं। उस समय तक

ज्योतिर्विदों की यह धारणा थी कि शनि ही सौरमण्डल में सबसे अधिक दूर स्थित है। किन्तु विलियम हरशेल की खोज ने हमारी इस मान्यता को समाप्त कर दिया।

हरशेल इंग्लैण्ड का निवासी था। संगीत में उसकी काफी रुचि थी। लेकिन साथ ही साथ कुछ यन्त्र आदि बनाने का भी वह शौकीन था। अपने कार्य में वह बड़ा तल्लीन हो जाता था, फिर खाने-पीने की भी उसे कोई खबर नहीं रहती थी। एक बार उसने एक दूरदर्शी यन्त्र सात इंच लम्बा बनाया था। उस यन्त्र की सहायता से उसने एक दिन सौरमण्डल में एक नवीन ग्रह देखा। तश्तरीनुमा होने के कारण हरशेल ने यह तो निश्चय कर ही लिया कि यह तारा नहीं है। अपनी इस नई खोज को और अधिक पुष्ट करने के लिए हरशेल ने इसे कई रात तक देखा। अपने निरीक्षण से हरशेल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उस तश्तरीनुमा ग्रह की स्थिति धीरे-धीरे बदलती रहती है। उसे पुच्छल तारा समझकर हरशेल ने उसकी सूचना रॉयल सोसायटी को भेजी।

हरशेल की रिपोर्ट के आधार पर बहुत-से ज्योतिर्विदों ने इस पुच्छल तारे के सम्बन्ध में खोजबीन प्रारम्भ की। अन्त में समस्त ज्योतिर्विद एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे कि वह पुच्छलतारा न होकर कोई नवीन ग्रह है जो शनि की कक्ष से परे है। इस नवीन ग्रह का मार्ग लगभग एक ही वृत्ताकार में है। इस नवीन

अन्वेषण ने हरशेल को एक साधारण संगीतज्ञ से एक महान् ज्योतिर्विद के आसन पर ला बैठाया। इंगलैण्ड की सरकार ने उसे 'सर' की उपाधि से विभूषित करके २०० पौंड वार्षिक वेतन पर राज-ज्योतिर्विद नियुक्त किया। रायल एस्ट्रानामिकल सोसायटी का प्रथम अध्यक्ष भी यही निर्वाचित हुआ। भाग्य की गति को कोई नहीं जानता। कब किस असाधारण घटना से किस व्यक्ति का भाग्य पलट जाए कौन जान सकता है!

हरशेल ने जिस नवीन ग्रह का अनुसंधान किया था उसके प्रारम्भ में अनेक नाम रखे गए। स्वयं हरशेल ने उसका नाम इंग्लैण्ड के तत्कालीन राजा जार्ज तृतीय के नाम पर जार्जियन रखा था। कई अन्य ज्योतिर्विद तो हरशेल के नाम पर उस नवीन ग्रह को 'हरशेल' ही पुकारने लगे। इस प्रकार विभिन्न नामों से जब इस नवीन ग्रह को संज्ञा दी गई तो गड़बड़ी होने

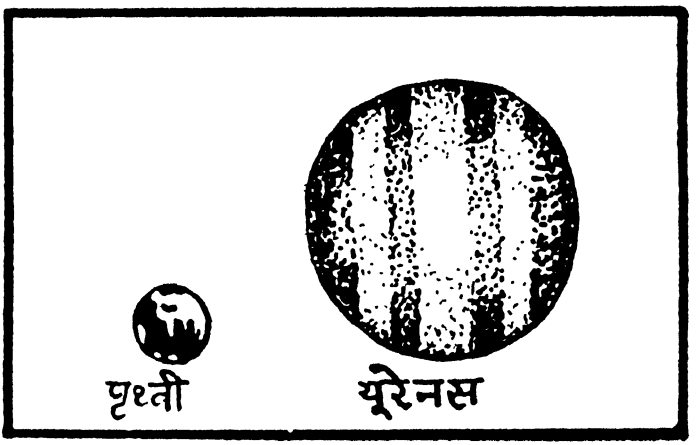

लगी। अन्त में जर्मनी के एक ज्योतिर्विद के सुझाव पर इसे यूरेनस (शनि का पिता) कहा जाने लगा।

सूर्य से यूरेनस की दूरी लगभग ९ अरब ७८ करोड़ ४० लाख मील है। यह मण्डलाकार रूप में सदैव घूमता है, अतः सूर्य से इसकी दूरी लगभग समान ही रहती है। पृथ्वी से इसकी दूरी का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि इस ग्रह से प्रकाश ३ घण्टे में आ पाता है, जबकि प्रकाश की गति प्रति सैकण्ड १ लाख ८६ हजार मील है। पृथ्वी से अत्यधिक दूर होने के कारण ही हजारों वर्ष तक यह ग्रह हमारी दृष्टि में नहीं आया। बिना किसी यन्त्र की सहायता के तो इस ग्रह को देखना बड़ा कठिन है। कभी निरभ्र आकाश में तीक्ष्ण दृष्टिवाले व्यक्ति ही बिना यन्त्र की सहायता से इसे देख सकते हैं। दूरदर्शी यन्त्रों से देखने पर भी इसका बिम्ब बड़ा छोटा दिखाई पड़ता है। ज्योतिर्विदों के अनुसार यूरेनस समुद्री हरे रंग का है। आकार में यह तीसरे नम्बर पर है। इस ग्रह का व्यास पृथ्वी से चार गुना अधिक है।

यूरेनस शनि की अपेक्षा मन्द गति से चलता है। इसकी गति १५,११० मील प्रति घण्टा है। इस प्रकार ८४ वर्ष में यह सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है। गुरुत्वाकर्षण की दृष्टि से पृथ्वी और यूरेनस लगभग समान हैं। यूरेनस सिरों पर नारंगी की भाँति चपटा है।

प्राकृतिक अवस्था के अनुसार इस ग्रह को तीन भागों में विभाजित करेंगे। सबसे पहले ग्रह का भीतरी भाग आता है। इसका व्यास १४,००० मील है। यह चट्टान का बना गोला है। इस भीतरी भाग के ऊपर चारों ओर ६,००० मील मोटी बर्फ की तह है और इन सबके ऊपर वायुमण्डल है। मीथेन गैस के इस वायुमण्डल की मोटाई लगभग ३,००० मील है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यूरेनस के वायुमण्डल में अमोनिया गैस ठोस बर्फ के रवों के रूप में होगी। वहाँ थोड़ी-बहुत हाइड्रोजन और हीलियम भी मिल सकती है। यूरेनस का ताप शून्य से १८०° सेण्टीग्रेड कम है। वहाँ के शीत का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है। यदि मनुष्य के लिए कृत्रिम साँस लेने को सुविधा भी प्रदान कर दी जाय तब भी उसका यूरेनस पर जीवित रहना असम्भव है।

यूरेनस की कीली, जिसके चारों ओर यह परिभ्रमण करता है, अक्ष-धरातल पर इतनी झुकी हुई है कि यह ९८° का कोण बनाती है। अन्य ग्रह बहुत कम झुके हुए हैं। इसी कारण कभी उत्तरी ध्रुव और कभी विषुवत रेखा हमारे सामने पड़ती है। यूरेनस १० घण्टे ४९ मिनट में अपनी धुरी पर एक पूरा चक्कर लगाता है, लेकिन अधिक झुकाव के कारण इसके एक गोलार्द्ध में २० वर्ष तक दिन और २० वर्ष तक रात तथा इसी प्रकार दूसरे गोलार्द्ध में पहले २० वर्ष में रात और दूसरे २० वर्ष में दिन रहता है।

पाँच उपग्रह, जिनमें मिरांडा भी एक है, इस ग्रह के चारों ओर घूमते हैं। मिरांडा इन पाँचों उपग्रहों में सबसे छोटा है। इसका व्यास केवल २०० मील है, जबकि इससे बड़े उपग्रह का व्यास १,८०० मील है। यूरेनस के उपग्रह पृथ्वी के उपग्रहों से परिभ्रमण अवस्था के कारण भिन्न हैं।

यूरेनस के सम्बन्ध में जो भी जानकारी प्राप्त हुई है, उसमें उपग्रहों के व्यास को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। ज्योतिर्विद इस ग्रह के सम्बन्ध में अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं और आशा है कि अन्य प्रामाणिक बातें शीघ्र ही प्रकाश में आएँगी।

प्रश्न

१. यूरेनस की खोज के पूर्व किस ग्रह को पृथ्वी से सबसे दूर माना जाता था ?

२. यूरेनस की खोज किसने की ?

३. सर हरशेल के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

४. यूरेनस के सम्बन्ध में ज्योतिर्विदों ने अभी तक जो जानकारी दी है उसे लिखिए।

: १८ :

टेलीविजन

देश-विदेश की घटनाओं को रेडियो के द्वारा सुनना तो आश्चर्यजनक है ही किन्तु उससे भी आश्चर्यजनकबात तो यह है कि दूर-दूर की घटनाओं को शीशे के पर्दे पर हम देख सकते हैं। यह आश्चर्यजनक आविष्कार है टेलीविजन, जिसके सम्बन्ध में हमने सुना तो बहुत होगा किन्तु अधिकांश लोगों ने टेलीविजन देखा नहीं होगा। इसका कारण यह है कि भारत में टेलीविजन अभी केवल दिल्ली में ही लगे हैं। विदेशों में अवश्य ही टेलीविजन का पर्याप्त विकास हुआ है और इसका बहुमुखी उपयोग किया जा रहा है।

टेलीविजन सैट- रेडियो-सैट की ही तरह दिखाई देता है। इस सैट में शीशे का पर्दा लगा रहता है जिस पर स्टूडियो में होने वाली घटनाओं के चित्र दिखाई देते हैं और आवाज़ भी सुनाई देती है। सिनेमा में पहले किसी भी दृश्य को फिल्म पर अंकित किया जाता है और उसके बाद सिनेमा घरों में उसका प्रदर्शन किया जाता है लेकिन टेलीविजन में स्टूडियो को घटनाओं को उसी समय टेलीविजन सैट पर देखा सुना जा सकता है।

टेलीविजन के काम करने का सिद्धान्त लगभग रेडियो जैसा ही है। टेलीविजन में ध्वनि की लहरों के स्थान पर दृश्य के प्रकाश को ही चढ़ाव-उतारवाली विद्युत धारा में बदलना पड़ता है। रेडियो तरंगों पर चढ़ाकर फिर इसे दूर-दूर तक भेजते हैं। इस प्रकार रेडियो तरंगों के सहारे ध्वनि के समान प्रकाश को भी दूर-दूर तक भेजा जाता है।

टेलीविजन में शीशे के पर्दे पर जो चित्र हमें दिखाई पड़ते हैं वे छोटी-छोटी बिन्दुओं के बने होते हैं। कुछ बिन्दु बड़े भी होते हैं, लेकिन बिन्दुओं की छोटाई ही चित्र की सफलता है। चित्र के हर एक बिन्दु को विद्युत् आवेग में बदल देगा टेलीकास्ट करने का प्रथम कार्य है। यह कार्य आइकनोस्कोप के द्वारा पूरा किया जाता है। आइकनोस्कोप शीशे का एक ग्लोब होता है जिसके तीन भाग होते हैं—पहला मोजेक, दूसरा कलेक्टर

रिंग और तीसरा इलेक्ट्रान गन। मोजेक में छोटे-छोटे फोटो इलेक्ट्रिक सैलों का जाल बिछा रहता है। आइकनोस्कोप में जो सैलों के जाल के सामने लैन्स रहता है उसके द्वारा बाहरी दृश्य की फोटो छाया फोटो इलेक्ट्रिक सैलों के जाल पर बनती है। इन पर प्रकाश पड़ता है। उनके नीचे के सैल से विद्युत धारा प्रवाहित होती है। जैसे ही किसी फोटो सैल पर प्रकाश पड़ता है, उससे इलेक्ट्रान कण छूटते है। अतः मोजेक पर्दे पर डाला गया चित्र धनात्मक विद्युत आवेगों में बदल जाता है।

मोजेक आइकनोस्कोप का प्रमुख भाग है। इसके धातु को प्लेट से प्रवाहित होने वाले ये इलेक्ट्रान एक विद्युत-आवेग बनाते हैं। फोटो ट्यूब पर पड़ने वाला प्रकाश, विद्युत-आवेग के ही समानुपाती होता है। इलेक्ट्रान प्रवाह जब भी एक सैल से दूसरे सैल पर पहुँचता है, उसी के अनुसार, विद्युत-आवेग जल्दी-जल्दी एक दूसरे के पीछे आते हैं तथा प्रत्यावर्ती धारा को रेडियो तरंगों पर चढ़ा देते हैं। उसकी सहायता से यह तरंगें सैकडों मील दूर तक जाती हैं। इस प्रकार दृश्य के प्रकाश को प्रत्यावर्ती धारा में बदलने का आइकनोस्कोप का कार्य पूरा होता है।

आइकनोस्कोप से निकली प्रत्यावर्ती धारा को हम कैथोड-रे ट्यूब के तार में से प्रवाहित करते है। इससे इलेक्ट्रान का प्रवाह होता है जो तार में बहने वाली धारा के समानुपाती

होता है। इसका परिणाम यह होता है कि पर्दे पर बिन्दियाँ क्रमशः एक के बाद एक करके चमकती है और लुप्त होती है। इन चमकती बिन्दियों से ही प्रसारित करने के यंत्र पर प्रसारित होने वाला प्रतिबिम्ब बनता है। ये बिन्दियाँ बारी-बारी से चमकती है परन्तु देखने वाले इसे देख नहीं पाते। वह यही सोचता है कि उसे तो एक लगातार प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है।

टेलीवीजन रेडियो-तरंगों पर चढ़ी, चढ़ाव-उत्तार अर्थात् प्रत्यावर्ती धारा (A. C.) को पृथक् करता है और रेडियो-तरंगों को ग्रहण करके उसे बिजली की धारा में परिवर्तित करता है। इस प्रत्यावर्ती धारा को बिम्ब बनाने वाले यंत्र कैथोड-रे ट्यूब में ले जाते है।

इलेक्ट्रान कणों की बारीक बौछार प्राप्त करने के लिए विद्युत धारा को कैथोड-रे ट्यूब के सिरे पर लगे टंगस्टन तार में से गुजारते हैं। इस धारा से गर्म होकर तार अपने में से ही इलैक्ट्रान निकालते हैं। इस प्रकार प्राप्त इलेक्ट्रान तीव्र गति से एक रेखा में चलते है जो विद्युतीय चुम्बकत्व क्षेत्र से प्रभावित हो सकते हैं। ये कण कैथोड-रे ट्यूब के सामने वाली दीवाल जिस पर रसायनिक पदार्थ लगा रहता है; के बीच में पड़ती है जिससे वह बिन्दु प्रकाशमान लगता है। प्रकाश बिन्दु की तीव्रता को कम या अधिक करने के लिये हमें टंगस्टन में

प्रवाहित धारा के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। जितनी ही धारा तीव्र होगी, इलेक्ट्रान उतने ही अधिक तीव्र निकलेंगे तथा बिन्दु की तीव्रता उतनी ही अधिक बढ़ जाएगी।

जिस छाया को हमें सारित करना होता हैं उसे छाया बनाने वाले यन्त्र द्वारा फोटो इलेक्ट्रिक सेलों पर बनाते हैं। जैसे ही यह छाया बनती है इलेक्ट्रानों की बौछार इलेक्ट्रिक सैलों के पर्दे पर इधर से ऊधर तेजी के साथ की जाती है। इस पर्दे पर पड़ने वाले बिन्दुओं को हम कई रेखाओं में एक के नीचे दूसरे में इस प्रकार विभक्त कर देते है। इलेक्ट्रान-कणों की तीव्र गति के कारण हम कहते हैं कि ये इन सैकड़ों रेखाओं पर एक सैकिण्ड में ही करीब ४४ बार चक्कर लगा लेते है। इलेक्ट्रानिक प्रवाह को मोजेक के एक किनारे के ऊपरी भाग से शुरू करते हैं। यह प्रवाह बाँई ओर से दाहिनी ओर मोजेक सैल्स की प्रथम पंक्ति पर होता है। फिर बाँई ओर लौट जाता है तथा बाद में दूसरी पंक्ति पर। इस प्रकार बना ही रहता है। थोड़ी सी देर में प्रवाह मोजेक की सभी पंक्तयों में से प्रवाहित हो जाता है।

टेलीविजन के उपर्युक्त सिद्धान्त देखने में बड़े सीधे मालूम पड़ते हैं किन्तु यह अभी तक के समस्त आविष्कारों में बड़ा जटिल है। हाँ, यह प्रयत्न अवश्य किया जा रहा है कि इनमें कुछ परिवर्तन करके इसे अधिक सरल बनाया जाए।

टेलीविजन के सिद्धान्त वर्णन करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि उसकी उपयोगिता पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला जाए। जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है कि टेलीविजन के शीशे के पर्दे पर हम स्टूडियो में होने वाले ड्रामा को देख सकते हैं और ड्रामा खेलने वालों की आवाज को भी सुन सकते हैं। किन्तु इस मनोरंजन के अतिरिक्त टेलीविजन से अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य भी सम्पादित होते हैं।

रूस, अमेरिका और इंग्लैण्ड आदि देशों में औद्योगिक टेलीविजन का भी पर्याप्त प्रचार हुआ है। बड़े-बड़े कारखानों में प्रबन्धक अपने आफिस में बैठकर ही समस्त कारखाने की गतिविधि को देख सकता है। आवश्यकतानुसार प्रबन्धक अपने स्थान पर बैठा-बैठा ही आवश्यक आदेश भी दे सकता है। इसके अतिरिक्त जिन स्थानों पर खतरनाक मशीनों के कारण जाना सम्भव नहीं हो सकता, उन स्थानों को टेलीविजन के द्वारा देखकर उनका प्रबन्ध कर सकता है। अपने कार्यालय में बैठे हुए वह फैक्ट्री के अन्य कार्यालयों को देखकर आवश्यकतानुसार आदेश प्रसारित कर सकता है।

औद्योगिक टेलीविजन जिसे आई० टी० वी भी० कहते हैं, चोर, बदमाश, अपराधियों को पकड़ने में भी बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है। टेलीविजन रिसीवर का पर्दा किसी भी बैंक के पास के थाने में लगा रहता है और बैंक के फाटक के सामने

टेलीविजन के कैमरे लगे रहते हैं। जब कभी कोई चोर चोरी करता है तो फाटक पर पहुँचते ही उसका चित्र थाने में रिसीवर के पर्दे पर उतर आता है। इस प्रकार बड़ी आसानी के साथ चोर पकड़ लिया जाता है। चोर यह नहीं जान पाता कि टेलीविजन भयंकर भेडिया के समान है जिसे धोखा देना उनकी बसकी बात नहीं।

टेलीविजन का उपयोग लन्दन के इन्जोनियरिंग कार्यालयों में डिजाइन बनाने के लिए भी सहायक सिद्ध हुआ है। डिजाइन बनाने के कमरों में टेलीविजन का कैमरा लगा रहता है और उसका रिसीवर चीफ इन्जीनियर के कमरे में रहता है। प्रमुख इन्जीनियर से जब किसी परामर्श की आवश्यकता होती है तो सम्बन्धित डिजाइन को कैमरे पर रखकर उसे दिखा दिया जाता है। चीफ इन्जीनियर उसे देखकर उचित निर्देश देता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी टेलीविजन बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसकी सहायता से विद्यार्थियों को जटिल यन्त्रों की संचालन क्रिया दिखाई और समझाई जाती है। नेशनल कालेज ऑफ रवर टेकनॉलोजी में सबसे पहले टेलीविजन की सहायता से इस प्रकार के लैसन्स दिए गए थे। मैडिकल कालेज के छात्रों को टेलीविजन से बहुत उपयोगी बातें बताई जा सकती हैं। आपरेशन थियेटर में जो नेत्र या हृदय के जटिल आपरेशन

होते हैं उनका स्पष्ट चित्र टेलीविजन के द्वारा छात्रों को दिखाया जा सकता है।

टेलीविजन के कैमरे से जहाज में बैठे ही बैठे समुद्र के भीतर के रहस्यमय जीव-जन्तुओं का पता लगा लिया जाता है। अब तो ऐसे टेलीविजन टेलीफोन का आविष्कार किया जा रहा है जिससे बात-चीत करने वाले एक दूसरे का चेहरा भी देख सकेंगे। इस टेलीफोन की दूसरी विशेषता यह होगी कि हमारी अनुपस्थिति में भी संदेश टेलीफोन पर रिकार्ड हो जाएगा।

टेलीविजन यद्यपि बड़ा उपयोगी आविष्कार सिद्ध हुआ है किन्तु इसकी प्रसारण शक्ति अभी बहुत कम है। रेडियो के द्वारा जहाँ हम हजारों मील के समाचार सुन सकते हैं, वहाँ टेलीविजन का कार्य-क्षेत्र अभी तक अधिक से अधिक २०० मील तक ही रहा है। केवल इतनी दूर तक की सीमा में ही टेलीविजन के कार्य-क्रम देखे जा सकते हैं। यों तो एक प्रोग्राम को कई बार रिले करने पर काफी दूर-दूर तक टेलीविजन प्रोग्राम देखा जा सकता है, किन्तु फिर भी वैज्ञानिक इस प्रयास में हैं कि टेलोविजन की प्रसारण शक्ति बढ़ाई जाए। आशा है कि शीघ्र ही ऐसे टेलोविजन सैटों का निर्माण होगा जिनसे रेडियो कीं भाँति संसार भर की घटनाओं को जानने और देखने में सफलता मिलेगी।

प्रश्न

१. टेलीविजन सैट में चित्र किस प्रकार दिखाई देते हैं ?

२. आइकनोस्कोप का टेलीविजन सैट में क्या कार्य है ?

३. टैलीविजन व्यापारिक क्षेत्र में क्या काम आता है ?

४. टैलीविजन के कुछ लाभ बतलाइ।